तत्त्वार्थसूत्रम्

Tattvārthasūtram

नवमोऽध्यायः

Ninth Chapter

तत्त्वार्थसूत्र

नवम अध्याय

इसमें **संवर** एवं **निर्जरा तत्त्व** को चित्रित किया गया है। चित्र के ऊपरी भाग में दायीं-बायीं ओर निर्ग्रन्थ मुनियों का अङ्कन है। मध्य में केवली भगवान् का, नीचे मध्य में बारह अनुप्रेक्षाओं को बारह लाइनों में दर्शाया है, इनका चिन्तन करते मुनि महाराज को दिखाया है। व उनके दायें-बायें दस धर्मों को दस स्वस्तिक स्तम्भ के रूप में दिखाया है। साथ ही 22 परीषहों को 22 बाणों के रूप में दर्शाया है।

चित्र के बायीं तरफ ग्रीष्म ऋतु में तपस्या करते हुये व उसके नीचे वृत्तिपरिसंख्यान तप दर्शित है, जिसमें मुनि महाराज घरों आदि का नियम लेकर आहार के लिये जाते दिखाये हैं। दायीं तरफ ऊपरी भाग में धर्म इच्छुक विनयशील पात्रों को उपदेश व शास्त्र देते मुनि महाराज दिखाये गये हैं व मध्य में वैय्यावृत्ति का भी अङ्कन है।

चित्र के निचले बायें-दायें भाग व मध्य में ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण एवं उत्सर्ग समिति का अङ्कन है। नीचे बायीं तरफ एषणा समितिपूर्वक आहार लेते मुनि महाराज, उसके पास मध्य में नीचे वाले चित्र में उत्सर्ग समिति, उसके ऊपर आदान-निक्षेपण समिति का अङ्कन है। दायें तरफ नीचे भाषा समितिपूर्वकचर्या पालन हेतु उपदेश देते मुनि महाराज व उसके ऊपर ईर्या समिति पालन हेतु सूर्य प्रकाश में गमन करते दर्शाया है।

चित्र का बाहरी आकार लोकाकार है।

तत्त्वार्थसूत्रम्
Tattvārthasūtram
नवमोऽध्यायः
Ninth Chapter

संवर की परिभाषा
Definition of Stoppage of Influx

आस्रवनिरोधः संवरः।।१।।

(आस्रव-निरोधः संवरः।)

Āsravanirodhaḥ Saṁvaraḥ. (1)

शब्दार्थ : **आस्रवनिरोधः** – (कर्मों के) आस्रव का निरोध यानी रुकना; **संवरः** – संवर (है)।

Meaning of Words : **Āsravanirodhaḥ** - Stoppage of influx of karmas; **Saṁvaraḥ** - Stoppage of inflow of karmas.

सूत्रार्थः कर्मों के आस्रव का निरोध यानी रुकना संवर है।

English Rendering : Stoppage of influx of karmas is Saṁvara.

टीका : आत्मा में जिन कारणों से नूतन कर्म आते हैं, उन कारणों को रोक देने से कर्मों का आगमन बन्द हो जाता है, यही संवर है। संवर के दो भेद हैं – भाव संवर और द्रव्य संवर। आत्मा के जिन परिणामों से कर्मों का आस्रव रुक जाता है, उनको भाव संवर कहते हैं और तदनुसार नवीन द्रव्य कर्मों का आस्रव नहीं होना द्रव्य संवर है।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में मिथ्यात्व प्रत्यय के निमित्त से जिन सोलह प्रकृतियों का आस्रव होता है, वे प्रकृतियाँ हैं – मिथ्यात्व, नपुंसक वेद, नरक आयु, नरक गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, नरक गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्तक और साधारण शरीर। जीव जब प्रथम गुणस्थान से ऊपर दूसरे सासादन आदि गुणस्थानों में पहुँचता है, तब इन सोलह कर्म प्रकृतियों का आस्रव नहीं होता। अतः उन गुणस्थानों में इनका संवर होता है।

दूसरे सासादन गुणस्थान तक अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से होने वाले असंयम रूप अविरति के निमित्त से जिन पच्चीस प्रकृतियों का आस्रव होता है, उनका ऊपर के गुणस्थानों में संवर होता है। ये पच्चीस प्रकृतियाँ हैं – निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, स्त्री-वेद, तिर्यञ्च आयु, तिर्यञ्च गति, न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान एवं वामन संस्थान, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन एवं कीलिका संहनन, तिर्यञ्च गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्र।

तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में किसी भी प्रकृति की बन्ध व्युच्छित्ति नहीं होती। इस गुणस्थान में मरण नहीं होता और न आयु बन्ध होता है।

चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होने वाले असंयम के निमित्त से निम्न दश प्रकृतियों का आस्रव होता है और आगे के गुणस्थानों में उनका संवर होता है – अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, मनुष्य आयु, मनुष्य गति, औदारिक शरीर और औदारिक शरीर अङ्गोपाङ्ग, वज्रर्षभनाराच संहनन एवं मनुष्य गति प्रायोग्यानुपूर्व्य।

पाँचवें संयमासंयम गुणस्थान तक प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से होने वाले असंयम के निमित्त से प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया एवं लोभ रूप चार प्रकृतियों का आस्रव होता है। आगे के गुणस्थानों में इनका संवर होता है। छठवें प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रमाद के निमित्त से निम्न छह प्रकृतियों का आस्रव होता है एवं आगे के गुणस्थानों में उनका संवर होता है – असाता वेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशःकीर्ति। देव आयु के आस्रव का प्रारम्भ पहले से सातवें गुणस्थान तक होता है। आगे के गुणस्थानों में देव आयु का संवर है।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में तीव्र सञ्ज्वलन कषाय के उदय से निम्न छत्तीस प्रकृतियों का आस्रव होता है और आगे के गुणस्थानों में उनका संवर होता है। आठवें गुणस्थान के प्रथम सङ्ख्यातवें भाग तक निद्रा और प्रचला इन दो प्रकृतियों का आस्रव होता है। पुनः सङ्ख्यातवें भाग तक निम्न तीस प्रकृतियों का आस्रव होता है – देव गति, पञ्चेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक शरीर अङ्गोपाङ्ग, आहारक शरीर अङ्गोपाङ्ग, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, देव गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ,

सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थङ्कर। आठवें गुणस्थान के अन्त समय तक हास्य, रति, भय और जुगुप्सा – इन चार प्रकृतियों का आस्रव होता है। इन प्रकृतियों का क्रमशः आगे के भागों एवं गुणस्थानों में संवर होता है।

नवमें अनिवृत्तिकरण बादर साम्पराय गुणस्थान में सञ्ज्वलन कषाय के मध्यम उदय से पाँच प्रकृतियों का आस्रव होता है। प्रथम समय से लेकर सङ्ख्यात भागों में पुरुषवेद और क्रोध सञ्ज्वलन का आस्रव होता है। पुनः सङ्ख्यात भागों में मान और माया सञ्ज्वलन का आस्रव होता है और अन्तिम समय तक लोभ सञ्ज्वलन का आस्रव होता है। इन प्रकृतियों का आगे के भागों एवं गुणस्थानों में संवर होता है।

दशवें सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान में मन्द सञ्ज्वलन कषाय के उदय से निम्न सोलह प्रकृतियों का आस्रव होता है और उसके आगे के गुणस्थानों में उनका संवर होता है – पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अन्तराय, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र। ग्यारहवें उपशान्त मोह, बारहवें क्षीण मोह और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थान में योग के निमित्त से एक साता वेदनीय का ही आस्रव होता है और चौदहवें अयोग-केवली गुणस्थान में उसका संवर होता है।

Comments : Influx which is the cause of taking in new kārmic matter, if removed, the binding of karma particles is stopped. This is called stoppage i.e. Saṁvara. It is of two kinds - Bhāva Saṁvara and Dravya Saṁvara. The cessation of activities by the soul that cause stoppage of influx is called psychic stoppage (i.e. Bhāva Saṁvara). This results in interruption of taking in of kārmic matter which is called material stoppage i.e. Dravya Saṁvara.

In the first stage of false belief of the spiritual development, there is influx of sixteen nature of karmas. These are - karmas causing wrong belief, neuter sex, infernal life-time, infernal state of existence, birth as a one sensed living being, birth as a two sensed being, birth as a three sensed being, birth as a four sensed being, unsymmetrical body, quite a weak joining of body structure, transmigrating force tending to infernal state of existence, a hot body emitting a warm light, immobile body, subtle body, an under developed body and a common body. When a living being happens to be in second stage of spiritual development Sāsādana and other higher stages, stoppage of these sixteen nature of karmas takes place. As such in these stages of spiritual development there is Saṁvara of these karmas.

Up to second stage of spiritual development Sasādana, as a result of Anantānubandhī passions, there is non-restraint causing influx of twenty five kinds of karmas. As such there is Saṁvara of these karmas from third stage onwards. These twenty-five kinds of karmas are - deep sleep, heavy drowsiness somnambulism, anger, pride, deceitfulness and greed all (four) of Anantānubandhī type, the female sex, Tiryañca age, Tiryañca stage of existence, partly asynmetrical configuration of body, body structure long & thin like a sword, hunched backed body structure and dwarfish body structure, osseous structure Vajranārāca, Nārāca, Arddhanārāca and fused one, the transmigrating force tending to Tiryañca state of existence, cold luster, awkward motion, causing apathy, ill-sounding voice, dull appearance i.e. lusterless body and low family status.

In the third stage of spiritual development i.e. Samyagmithyādṛṣṭi, there is no bondage or dissociation of karmas. There is no death and no bondage of age determining karma in this stage.

In the fourth stage of spiritual development i.e. Aviratasamyagdṛṣṭi as a result of rise of Apratyākhyanāvaraṇa passions due to non-restraint, there is influx of the following ten kinds of karmas and there is Saṁvara of these kinds in higher stages - Apratyākhyanāvaraṇa anger, pride, deceitfulness and greed, human age, human state of existence, physical body, limbs & sub limbs of the physical body, Vajrarṣabhanārāca Saṁhanana and transmigrating force tending to human birth.

In the fifth stage of spiritual development i.e. Saṁyamāsaṁyama as a result of rise of Apratyākhyanāvaraṇa passions resulting in partial restraint there is influx of four kinds of Pratyākhyānāvaraṇa anger, pride, deceitfulness and greed. There is no binding of these kinds in the higher stages of spiritual development. In the sixth stage of Pramattasaṁyata of the spiritual development as a result of non-restraint due to indiscipline there is influx of the following six kinds of karmas and there is Saṁvara of these kinds in higher stages - karmas causing the feelings of pain, disliking or dis-statisfaction, sorrow, infirm frame i.e. body without stamina, unsteadiness, ugly body & disrepute. Influx of celestial age determining karma occurs from first stage to seventh stage of spiritual development and there is Saṁvara of this in higher stages.

In the eight stage - Apūrvakaraṇa, due to intense Sañjvalana kind of passions, there is influx of thirty-six kinds of karmas and there is Saṁvara of these in higher stages. In the first numerableth part of the eighieth stage, there is influx of two kinds of karma causing sleep and drowsiness. Again in the numerableth part, the following thirty kinds are bound-celestial stage of existence, birth as a being with five senses, transformable body, translocational body, electric body, kārmic body, symmetrical build, limbs & sub-limbs of the transformable body, limbs & sub-limbs of translocational body, colour, odour, taste, touch, transmigrating force tending to celestial state, neither heavy nor light, self-annihilation, destruction caused by other, respiration, graceful movement, Trasa, gross body, complete development, individual body, steadiness, lovely body, amiable personality, melodious voice, lusterous body, construction of the body and Tīrthaṅkara. Upto the last instant of the stage the four karmas causing laughter, liking, fear and disgust bind. There is Saṁvara of these karmas in higher stages of Sāmparāya stage etc.

As a result of rise of moderate Sañjvalana kind of passions in the ninth Anivṛttikaranabādara stage of spiritual development, there is influx of five kinds of karmas. From the first instant up to numerableth parts, there is influx of male-sex and anger of Sañjvalana type. Again in numerableth part, there is influx of Sañjvalana type of pride and deceitfulness and in the final instant there is influx of Sañjvalana type of greed. Owing to the obsence of such passions, there is Saṁvara of these kinds of karmas in the higher stages of spiritual development.

In the tenth stage - Sūkṣma Sāmparāya, as a result of minute Sañjvalana type of passions, influx of the following sixteen karmas occur and due to absence of such passions in the higher stages, there is Saṁvara of these karmas - five knowledge obscuring karmas, four perception obscuring karmas, five obstructive karmas, honour & glory and high family status determining karma.

In the eleventh Upaśāntamoha, twelvfth Kṣīṇakaṣāya and thirteenth Sayogakevalī stages of spiritual development, there is only influx of karmas causing feeling of pleasure owing to mere activity i.e. Yoga and in the next fourteenth stage of Ayogakevalī, there is Saṁvara of the same.

संवर के कारण
Means of Stoppage of Influx

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः।।२।।

(सः गुप्ति–समिति–धर्म–अनुप्रेक्षा–परिषहजय–चारित्रैः।)

Sa Guptisamitidharmānuprekṣāpariṣahajayacāritraiḥ.(2)

शब्दार्थ : **सः** – वह (संवर); **गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरिषहजयचारित्रैः** – गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र से (होता है)।

Meaning of Words : **Saḥ** - that (Saṁvara); **Guptisamitidharmānuprekṣāpariṣahajayacāritraiḥ** - Gupti (i.e. preservation), Samiti (carefulness), Dharma (religious observances), Anuprekṣā (repeated reflections), Pariṣahajaya (subdual of sufferings) and righteous conduct.

सूत्रार्थ : गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषहजय और चारित्र संवर के कारण हैं।

English Rendering : The causes of Saṁvara are by preservance, carefulness religious observances, repeated reflections, subdual of sufferings and by practice of righteous conduct.

टीका : इस सूत्र में उन कारणों का उल्लेख है जिनसे संवर यानी आस्रव का निरोध होता है। संसार के कारणभूत राग आदि से जो आत्मा की रक्षा करे, उसे गुप्ति कहते हैं। अथवा, सम्यक् प्रकार से योगों का निग्रह करना गुप्ति है। अथवा, मन, वचन, काय की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोकना गुप्ति है। गुप्ति के तीन भेद हैं – काय गुप्ति, वचन गुप्ति और मनो गुप्ति।

प्राणियों को पीड़ा न पहुँचे, ऐसा विचार कर दया भाव से सावधानीपूर्वक सभी प्रवृत्तियाँ करना समिति कहलाती है। यह पाँच प्रकार की है – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान–निक्षेप समिति और उत्सर्ग समिति।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही धर्म है। या, जो जीवों को संसार के दुःखों से बचाकर मोक्ष सुख में पहुँचावे, वह धर्म है। अथवा, वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। धर्म के दश भेद कहे गये हैं – उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य।

उत्तम तप के दो प्रकार हैं – बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाह्य तप के छह प्रकार हैं – अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसङ्ख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश। आभ्यन्तर तप के भी छह भेद हैं – प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान।

संसार, शरीर और भोग सामग्री के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। इसके बारह भेद हैं - अनित्य अनुप्रेक्षा, अशरण अनुप्रेक्षा, संसार अनुप्रेक्षा, एकत्व अनुप्रेक्षा, अन्यत्व अनुप्रेक्षा, अशुचि अनुप्रेक्षा, आस्रव अनुप्रेक्षा, संवर अनुप्रेक्षा, निर्जरा अनुप्रेक्षा, लोक अनुप्रेक्षा, बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा, धर्म स्वाख्यातत्व अनुप्रेक्षा।

परिषह या उपसर्ग की परिस्थितियों में अपने परिणामों पर विजय या नियन्त्रण प्राप्त करना परिषह जय है। परिषहजय के बाईस भेद हैं - क्षुधा परिषहजय, तृषा परिषहजय, शीत परिषहजय, उष्ण परिषहजय, दंशमशक परिषहजय, नाग्न्य परिषहजय, अरति परिषहजय, स्त्री परिषहजय, चर्या परिषहजय, निषद्या परिषहजय, शय्या परिषहजय, आक्रोश परिषहजय, वध परिषहजय, याचना परिषहजय, अलाभ परिषहजय, रोग परिषहजय, तृणस्पर्श परिषहजय, मल परिषहजय, सत्कारपुरस्कार परिषहजय, प्रज्ञा परिषहजय, अज्ञान परिषहजय और अदर्शन परिषहजय।

बाह्य में पापों से निवृत्ति और अन्तरङ्ग में कषायों का अभाव होना चारित्र है। यद्यपि चारित्र के अनेक भेद-प्रभेद हैं, लेकिन मुख्य रूप से पाँच भेद कहे गये हैं - सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापना चारित्र, परिहारविशुद्धि चारित्र, सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र और यथाख्यात चारित्र।

Comments : This Sūtra describes causes of Saṁvara i.e. stoppage of influx. That by which the soul is protected from the causes of transmigration is control i.e. Gupti or control of Yogas in a righteous manner is Gupti or to stop unrestraint activities of mind, speech and body is 'Gupti'. It is of three kinds - control of body activity (i.e. Kāya-gupti), control of speech activity (i.e. Vacanagupti) and control of mind activity (Manogupti).

Kind heartedly careful movement to avoid injury to living beings is regulation i.e. 'Samiti'. It is of five kinds - Īryā Samiti i.e. regulation or carefulness in walking; Bhāṣā Samiti i.e. regulation or carefulness in speech; Eṣaṇā Samiti i.e. regulation or carefulness in meal-taking; Ādāna-nikṣepa Samiti i.e. regulation or carefulness in handling objects or articles and Utsarga Samiti i.e. regulation or carefulness in disposal of excreta etc.

Right Faith, Right knowledge and Right conduct is the virtue or Dharma or that which takes one to the bliss of salvation and saves from the pains of mundane sufferings is Dharma or the nature of things is Dharma. Dharma is of ten kinds - Uttama Kṣamā (supreme forgive-ness), Uttama Mārdava (supreme humility), Uttama Ārjava (supreme

straight-forwardness), Uttama Śauca (supreme purity), Uttama satya (supreme truth), Uttama Saṁyama (supreme restraint), Uttama Tapa (supreme penance), Uttama Tyāga (supreme renunciation), Uttama Ākiñcanya (supreme aloneness), and Uttama Brahmacarya (supreme celibacy).

Uttama Tapa is of two kinds - external penance and internal penance. External penance is of six kinds - fasting, reduced diet, regulation in the process of meal taking activity, control of apetising food items like milk, sugar, Ghī etc., sitting and sleeping in isolated places and mortification of body. Internal penance is also of six kinds - expiation, reverence, pious service to the saints, study of religious scriptures, not to have attachment with mundane objects and meditation.

To ponder over repeatedly on the real nature of the world, body and pleasure - objects is 'Anuprekṣā'. It is of twelve kinds - Anitya Anuprekṣā, Aśaraṇa Anuprekṣā, Saṁsāra Anuprekṣā, Ekatva Anuprekṣā, Anyatva Anuprekṣā, Aśuci Anuprekṣā, Āsrava Anuprekṣā, Saṁvara Anuprekṣā, Nirjarā Anuprekṣā, Loka Anuprekṣā, Bodhidurlabha Anuprekṣā and Dharma Svākhyātatva Anuprekṣā.

To keep control or restrain over the feelings at the time of afflictions or calamity is Pariṣaha Jaya. It is of twenty-two kinds - to conquer the affliction of hunger, thirst, cold, heat, bite of misquito etc., feeling of shame owing to nudity, remaining indifferent towards mundane pleasure-objects, sexual attraction of women, feeling of fatigue & other obstructions during travel by the monks, different kinds of meditational postures, taking rest on ground or wooden planks with one side body posture, feeling of anger when one is insulted, when an assualt is made by an enemy, desires in extreme needs, when not geting desired mundane objects, no relief from the disease even with due care or treatment, feeling of pain caused due to prick of thorn etc. in feet while walking, feeling of disgust due to unclean body, desire to get respect, praise or reward, pride of having superior knowledge, failure to gain knowledge even after best efforts and feeling of despair arising out of the failure to attain desired fruits of penance.

To get rid of de-merits externally and not to have passionate feeling internally is conduct or 'Cāritra'. Although 'Cāritra' is said to be of many kinds, it is basically of five kinds - Sāmāyika Cāritra, Chedopasthāpanā Cāritra, Parihāraviśuddhi Cāritra, Sūkṣmasāmparāya Cāritra and Yathākhyāta Cāritra.

तपसा निर्जरा च।।३।।

(तपसा निर्जरा च।)

Tapasā Nirjarā Ca. (3)

शब्दार्थ : **तपसा** – तप के द्वारा; **निर्जरा** – निर्जरा (कर्मों का एकदेश क्षय होना); **च** – और (संवर भी)।

Meaning of Words : **Tapasā** - by penance; **Nirjarā** - Nirjarā (partial dissociation of karmas); **Ca** - and (stoppage of influx of karmas also).

सूत्रार्थ : तप के द्वारा निर्जरा और संवर भी होता है।

English Rendering : Penance is the cause of both partial dissociation and Restraint of influx of karmas.

टीका : ऐसी शारीरिक और मानसिक क्रिया, जो अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग मल के सन्ताप से सन्तप्त आत्मा की शुद्धि में कारण हो, वह तप कहलाता है। अथवा ख्याति, पूजा, लाभ आदि की भावना को त्यागकर कर्मों के क्षय के लिये जो तपा जाता है, उसे तप कहते हैं। अथवा रत्नत्रय की प्राप्ति के लिये इच्छाओं का निरोध करना तप है। या जिसके द्वारा कर्मरूपी ईंधन को जलाकर जो भस्म किया जाता है, वह तप है। तप के भेद-प्रभेदों का कथन सूत्र दो की टीका में किया गया है। यद्यपि तप दस धर्मों में अन्तर्भूत है, फिर भी विशेष रूप से निर्जरा का कारण बताने के लिये यहाँ पृथक् से ग्रहण किया गया है।

Comments : Such a physical and mental activity which purifies soul oppressed by external and internal filth of mundane distress, is called penance or 'Tapa'. Or the penance which is undertaken for annhilation of karmas without any desire for fame, reverence or gain etc. is called 'Tapa'. Or to control the desires for attainment of 'Ratnatraya' is 'Tapa'. Or that which burns the karmic fuel is 'Tapa'. Its kinds & sub-kinds are described under comments of Sūtra-2. Although penance is included in ten kinds of Dharmas this being main cause for dissociation of karmas, has been stated here separately.

गुप्ति का लक्षण

Characteristics of Preservation

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः।।४।।

(सम्यक्-योग-निग्रहः गुप्तिः।)

Samyagyoganigraho Guptiḥ. (4)

शब्दार्थ : **सम्यग्योगनिग्रहः** – सम्यक् प्रकार से योगों का निग्रह; **गुप्तिः** – गुप्ति (है)।

Meaning of Words: **Samyagyoganigrahaḥ** - To control preserving activities in a righteous manner; **Guptiḥ** - (is) Preservation.

सूत्रार्थ : योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है।

English Rendering : To control activities in a righteous manner is Gupti or preservation.

टीका : काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। गुप्ति की व्याख्या और उसके तीन भेदों का कथन सूत्र दो की टीका में किया गया है। शरीर के द्वारा होने वाली पाप क्रियाओं का त्याग करना अथवा सभी प्रकार की क्रियाओं का त्याग करना काय-गुप्ति है। पापरूप असत्य वचन का त्याग करना या मौन धारण करना वचन-गुप्ति है। राग, द्वेष, मोह आदि अशुभ भावों का परिहार करना मनो-गुप्ति है।

सूत्र में 'सम्यक्' विशेषण विषय सुख की अभिलाषा के लिये की जाने वाली प्रवृत्ति के निषेध करने के लिये दिया गया है।

Comments : Yoga is defined as activities of body, speech and mind. The definition of 'Gupti' and its three kinds have been given under comments of Sūtra-2. To control or to give up all sinful activities of body is 'Kāya-gupti'. To give up speech propelled by passions or to observe silence is 'Vacana-gupti'. To control or give up inauspicious thoughts having attachment, aversion, delusion etc. is 'Mano-gupti'.

The inclusion of 'Samyak' adjective in the Sūtra is to negate the desires for indulgence in mundane-pleasure-seeking activities.

समितियों के भेद

Kinds of Carefulness

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।।५।।

(ईर्या-भाषा-एषणा-आदाननिक्षेप-उत्सर्गाः समितयः।)

Īryābhāṣaiṣaṇādānanikṣepotsargāḥ Samitayah. (5)

शब्दार्थ : **ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः** – ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्ग; **समितयः** – समितियाँ (हैं)।

Meaning of Words : **Īryābhāṣaiṣaṇādānanikṣepotsargāḥ** - carefulness in walking, speech, meal taking, lifting and accepting things and in excretion; **Samitayaḥ** - (is) regulation of activities.

सूत्रार्थ : ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप एवं उत्सर्ग – ये समितियाँ हैं।

English Rendering : Carefulness in walking, speech, meal taking, lifting and putting things and in disposal of excreta is Samiti or (regulation of activities).

टीका : यहाँ 'सम्यक्' पद की अनुवृत्ति सूत्र चार से होती है। यानी सम्यक् या समीचीन प्रकार से समितियों का पालन अपेक्षित है।

सावधानीपूर्वक जीवदया का भाव रखते हुए जो व्यवहार आवश्यक हो, उसे करना समिति है। समितियाँ पाँच हैं – ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेप समिति एवं उत्सर्ग समिति।

ईर्या समिति – दिन में चार हाथ जमीन देखकर प्रासुक मार्ग पर प्रयोजनवश जीवदया का पालन करते हुए गमन करना।

भाषा समिति – बोलते समय ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो आनन्ददायक, हितकारी और विषय सापेक्ष व सङ्क्षिप्त हों। यह सावधानी रखना आवश्यक है कि बोलने से किसी को कष्ट न पहुँचे।

एषणा समिति – ४६ दोषों को टालकर, संयम हेतु श्रावकों के घर शुद्ध आहार नवधा भक्तिपूर्वक दिये जाने पर ही ग्रहण करना अपेक्षित है।

आदान–निक्षेप समिति – आवश्यक उपकरणों, शास्त्र आदि को देखभाल कर सावधानीपूर्वक ही ग्रहण करना एवं रखना चाहिए।

उत्सर्ग समिति – मल–मूत्र आदि का निक्षेपण देखभाल कर ऐसे स्थान पर करना चाहिए जो स्त्री–पुरुषों के आवागमन रहित हो, जीव–जन्तुओं से रहित हो एवं जिससे किसी को कष्ट न हो, उसे उत्सर्ग (व्युत्सर्ग) या प्रतिष्ठापन समिति कहते हैं।

असंयम रूप परिणामों से जो कर्मों का आस्रव होता है, उनका सम्यक् प्रकार से इन समितियों के पालन करने के कारण संवर होता है।

Comments : 'Samyak' or carefulness is implied here that 'Samiti' are to be observed with due care.

To perform activities with compassionate feelings is Samiti. These are five - Īryā Samiti, Bhāṣā Samiti, Eṣaṇā Samiti, Ādāna-nikṣepa Samiti and Utsarga Samiti.

Īryā Samiti - Carefulness in movement so that injury or hurt does not take place to any living organism. One must walk only during day light carefully observing the path ahead - a distance of four cubits.

Bhāṣā Samiti - While speaking, one must speak only such words which are pleasant, benevolent, relevent and to the point. Care is exercised that no one is hurt by one's speech.

Eṣaṇā Samiti - It is expected that one accepts only pure food articles offered by a religious house-holder with due reverence.

Ādānanikṣepa Samiti - After careful examination the placing and lifting of essential articiles such as religious books etc. must be done.

Utsarga Samiti - One must discharge excreta etc. at a desolate place which is free from movement of human beings, living organism and does not cause any harm to anyone is known as 'Utsarga' ('Vyutsarga') or Pratiṣṭhāpana Samiti.

Practising these Samitis in a righteous manner results in Saṁvara of those karmas which influx as a result of un-restraint activities.

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य– ब्रह्मचर्याणि धर्मः।।६।।

(उत्तम–क्षमा–मार्दव–आर्जव–शौच–सत्य–संयम–तपः–त्याग–
आकिञ्चन्य–ब्रह्मचर्याणि धर्मः।)

**Uttamakṣamāmārdavārjavaśaucasatyasaṁyama-
tapastyāgākiñcanyabrahmacaryāṇi Dharmaḥ. (6)**

शब्दार्थः **उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागा किञ्चन्य – ब्रह्मचर्याणि–** उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य; **धर्मः** – धर्म (हैं)।

Meaning of Words : **Uttamakṣamāmārdavārjavaśaucasatyasaṁyamatapastyāgākiñcanyabrahmacaryāṇi** - Uttama Kṣamā (Perfect forgiveness), Uttama Mārdava (Perfect humility), Uttama Ārjava (Perfect straight forwardness), Uttama Śauca (Perfect purity), Uttama Satya (Perfect truthfulness), Uttama Saṁyama (Perfect restraint), Uttama Tapa (Perfect penance), Uttama Tyāga (Perfect renunciation), Uttama Ākiñcanya (Perfect aloneness) and Uttama Brahmacarya (Perfect celibacy); **Dharmaḥ** - (are) religious obserwances.

सूत्रार्थ : उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम ब्रह्मचर्य – यह दस प्रकार का धर्म है।

English Rendering : supreme forgiveness, supreme humility, supreme straight forwardness supreme purity, supreme truthfulness, supreme restraint, supreme penance, supreme renunciation, supreme aloneness and supreme calibacy are ten kinds of religious observances.

टीका : संवर के कारणों में प्रथम गुप्ति का कथन है। मुनि उसके पालन करने में यदि पूर्ण रूप से सक्षम न हो, तो समितियों का कथन किया गया है। उन समितियों

के पालन में प्रमाद का परिहार करने के लिये यहाँ दस धर्मों का वर्णन किया गया है। इनका सङ्क्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है –

उत्तम क्षमा – क्रोध के निमित्त होने पर भी कालुष्य भाव का न होना क्षमा है।

उत्तम मार्दव – जाति आदि के अभिमान का अभाव होना मार्दव है।

उत्तम आर्जव – योगों की सरलता आर्जव है।

उत्तम शौच – प्रकर्षता को प्राप्त लोभ की निवृत्ति शौच है।

उत्तम सत्य – अच्छे पुरुषों के साथ साधु का हित, मित, प्रिय वचन बोलना सत्य है।

उत्तम संयम – सभी प्राणियों पर जीव दया, इन्द्रिय और मन को वश में करते हुए प्रवृत्ति करना संयम है।

उत्तम तप – कर्मों के क्षय करने के उद्देश्य से बाह्य और अन्तरङ्ग रूप से तप करना तप है।

उत्तम त्याग – परिग्रह की निवृत्ति को त्याग कहते हैं। संयत के योग्य ज्ञान आदि का दान करना भी त्याग है।

उत्तम आकिञ्चन्य – जो शरीर आदिक उपात्त हैं, उनमें भी संस्कार का त्याग करने के लिये 'यह मेरा है' – ऐसा नहीं विचारना और तदनुसार प्रवृत्ति करना आकिञ्चन्य है। जिसका कुछ नहीं है वह अकिञ्चन है और उसका भाव या कर्म आकिञ्चन्य है।

उत्तम ब्रह्मचर्य – शील का निर्दोष पालन करना ब्रह्मचर्य है। अनुभूत स्त्री का स्मरण न करने से, स्त्री विषयक कथा के सुनने का त्याग करने और स्त्री से सटकर सोने–बैठने का त्याग करने से परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता है अथवा स्वतन्त्र वृत्ति का त्याग करने के लिये गुरुकुल में निवास करना ब्रह्मचर्य है।

दिखाई देने वाले प्रयोजन का निषेध करने के लिये क्षमा आदि के पहले 'उत्तम' विशेषण दिया है। इस प्रकार जीवन में उतारे गये और स्वगुण तथा प्रतिपक्षभूत दोषों के सद्भाव में यह लाभ और यह हानि है, इस तरह की भावना से प्राप्त हुए ये धर्म सञ्ज्ञावाले उत्तम क्षमा आदिक संवर के कारण होते हैं।

Comments : For stoppage of influx (i.e. Saṁvara), first of all, Gupti or control is mentioned. If a monk is not capable of practising the

same completely, then he should follow the practice of 'Samitis'. To avoid negligence in the practice of Samitis, ten kinds of Dharmas have been described here. Their brief description is as under -

Uttama Kṣamā or **supreme forgiveness -** not to have feeling of defilement even when conditions persist to get angry.

Uttama Mārdava or **supreme humility -** absence of arrogance or egotism owing to high birth etc.

Uttama Ārjava or **supreme straight forwardness -** it is to be free from crookedness of mind, speech & body.

Uttama Śauca or **supreme purity -** it is freedom from intense greed.

Uttama Satya or **supreme truth -** to speak only pleasant, benevolent, relevent and to the point words to the noble persons.

Uttama Saṁyama or **supreme restraint -** to have kind & compassionate feelings towards all living beings and perform activities by controlling sensuous pleasure and avoiding hurt or injury to them.

Uttama Tapa or **supreme penance -** to undertake external and internal penance to destroy the accumulated karmas.

Uttama Tyāga or **supreme renunciation -** to part with possessions or to impart knowledge to others for their emancipation.

Uttama Ākiñcanya or **supreme possessionlessness -** not to think that even the body etc. is mine and act accordingly. One who does not possess any thing is Akiñcana and such a feeling that 'nothing belongs to me' is Ākiñcanya.

Uttama Brahmacarya or **supreme celibacy -** To practise chastily without any infirmities is Brahmacarya. Not to have any thought about a woman, to renounce the stories connected with women and not to sleep or sit very close to a woman lead to perfect celibacy or to reside in 'Gurukula' so as to have control over wayward activities is Brahmacarya.

The word 'supreme' is added to every one of the terms in order to indicate the avoidance of temporal objectives. In this manner, these Dharmas accepted in one's life result in analysing as to what is beneficial for one's emancipation and what is not, cause stoppage of influx i.e. Saṁvara

अनुप्रेक्षाओं के नाम

Names of Repeated Reflections

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधि–दुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।।७।।

(अनित्य–अशरण–संसार–एकत्व–अन्यत्व–अशुचि–आस्रव–संवर–निर्जरा–लोक–बोधिदुर्लभ–धर्म–सुआख्यातत्व–अनुचिन्तनम् अनुप्रेक्षाः।)

Anityāśaraṇasaṁsāraikatvānyatvāśucyāsravasaṁvaranirjarā-lokabodhidurlabhadharmasvākhyātatvānucintanamanuprekṣāḥ. (7)

शब्दार्थ : **अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोक–बोधिदुर्लभधर्मस्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः** – अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्मस्वाख्यातत्व का बार–बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं।

Meaning of Words : **Anityāśaraṇasaṁsāraikatvānyat-vāśucyāsravasaṁvaranirjarālokabodhidurlabhadharmasvākhyātat-vānucintanamanuprekṣāḥ** - Anitya (transitory nature of things), Aśaraṇa (no-shelter or helplessness), Saṁsāra (nature of universe i.e. endless sufferings), Ekatva (soul alone is responsible for deeds), Anyatva (body & soul are separate), Aśuci (body is filthy and impure), Āsrava (influx of karmas), Saṁvāra (stoppage of influx of karmas), Nirjarā (partial dissociation of karmas), Loka (nature of universe), Bodhidurlabha - (rarily of omniscience) and Dharmasvākhyātatva (only Ratnatraya useful for spiritual emancipation). Repeated reflection of these are Anuprekṣās.

सूत्रार्थ : अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ तथा धर्मस्वाख्यातत्व का बार–बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं।

English Rendering : Repeated reflection on the transitory nature of things, none is capable of providing shelter or protection, endless sufferings of the universe, lonliness of soul, separate existence of body & soul, fithy nature of body, influx of karmas, stoppage of

influx of karmas, partial dissociation of bound karmas, nature & constituent of universe, rarity of omniscience and natūre of self as prescribed in religious scriptures, are Anuprekṣās.

टीका : संसार, शरीर और भोग सामग्री के स्वभाव का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा कहलाता है। ये अनुप्रेक्षाएँ बारह प्रकार की हैं। इनसे आत्मोन्नति के लिये आवश्यक वैराग्य भावना उत्पन्न होती है। इन भावनाओं का सङ्क्षिप्त कथन इस प्रकार है -

१. अनित्य अनुप्रेक्षा – शरीर, इन्द्रियों के विषय, उपभोग-परिभोग रूप द्रव्यों के अनित्य स्वभाव का चिन्तन करना। इससे वियोग काल में भी सन्ताप नहीं होगा।

२. अशरण अनुप्रेक्षा – मेरे दुःखों को मेरे पुरुषार्थ के अतिरिक्त अन्य कोई दूर नहीं कर सकता, कोई अन्य शरण नहीं है। एक मात्र शरण सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म हैं।

३. संसार अनुप्रेक्षा – मोह के वशीभूत मैं इस संसार में परिभ्रमण कर अनेकानेक गति और पर्यायों में दुःख भोग रहा हूँ। इससे संसार से निर्वेद होता है और संसार नाश का प्रयत्न करने के लिये प्रेरणा मिलती है।

४. एकत्व अनुप्रेक्षा – मेरी आत्मा ही मेरे कार्यों के लिये उत्तरदायी है और इन कर्मों का फल मेरी आत्मा को ही भोगना है, अन्य कोई सहयोगी नहीं होगा। इससे स्वजनों में प्रीति का अनुभव नहीं होता।

५. अन्यत्व अनुप्रेक्षा – आत्मा और शरीर पृथक्-पृथक् हैं। इससे संयोगी सम्बन्धों में अरुचि उत्पन्न होती है।

६. अशुचि अनुप्रेक्षा – यह शरीर स्वभाव से ही घृणित और अशुद्ध है। इससे शरीर से निर्वेद होता है।

७. आस्रव अनुप्रेक्षा – संसार के दुःखों और संसार के भ्रमण का एक मात्र कारण कर्मों का आस्रव ही है। इसलिये संसारी कार्य करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। यदि कार्य करना आवश्यक ही हो तो आत्मा को पवित्र करने हेतु पुण्य कार्य ही करना चाहिए। पापास्रव न्यूनतम हो, ऐसा विचार होना चाहिए।

८. संवर अनुप्रेक्षा – ऐसे उपाय करने चाहिए जिससे कर्मास्रव रुक जावे, या उनमें कमी आ जावे।

९. **निर्जरा अनुप्रेक्षा –** तप द्वारा कर्मों की निर्जरा ही मोक्षमार्ग में उपादेय है।

१०. **लोक अनुप्रेक्षा –** यह लोक छह द्रव्यों से बना है। इसका परिणमन स्वयमेव होता है, इसलिये कर्त्ता, भोक्ता या स्वामित्व का भाव नहीं आना चाहिए।

११. **बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा –** तप की भावना, धर्म की प्रभावना और सुखपूर्वक मरण रूप समाधि का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये तप, धर्म और समाधि प्राप्त हों, ऐसे विचार और पुरुषार्थ करने की प्रेरणा मिलती है।

१२. **धर्मस्वाख्यातत्व अनुप्रेक्षा –** व्रत, नियम, संयम, तप आदि से ही आत्मा की उन्नति सम्भव है। इसी से आत्मिक सुख प्राप्त होता है। अतः हमेशा इन उपायों के लिये चिन्तन और पुरुषार्थ करने की प्रेरणा मिलती रहती है।

Comments : To ponder over repeatedly on the real nature of world, body and pleasure-objects is Anuprekṣā. These are of twelve kinds. These reflections generate necessary feelings for mundane desires. These are briefly as under.

1. Anitya Anuprekṣā - To reflect on the transitory nature of body, pleasure of senses, consumable & non-consumable pleasure items. This enables one not to undergo distress when he loses them.

2. Aśaraṇa Anuprekṣā - No-one else except my own efforts can get me rid-of my sufferings; no-one else can provide protection. The only protectors are true Deva, Śāstra, Guru and Dharma.

3. Saṁsāra Anuprekṣā - Owing to delusion, I am undergoing several kinds of sufferings in mundane transmigration. Such a reflection causes mundane detachment and induces one to destroy the transmigration.

4. Ekatva Anuprekṣā - My soul alone is responsible for bound of karmas and my soul alone has to bear the consequences of the karmas; no one else can share these. This leads not to have attachment towards one's blood-relations.

5. Anyatva Anuprekṣā - The physical body and the soul are the two separate entities. This results in detachment or dislike towards worldly allianc relations.

6. Aśuchi Anuprekṣā - This body, by its very nature is filthy and impure. This results in the feeling of detachment from the body.

7. Āsrava Anuprekṣā - The only cause for mundane sufferings and transmigration is influx of karmas. Therefore, while performing mundane activities, one is required to exercise extreme care. If performance of worldly activities becomes essential, attempts should be to have only the meritorious activities. One should think of having minimum possible sinful influx.

8. Saṁvara Anuprekṣā - One must act in such a manner that influx of karmas is stopped or reduced to the minimum.

9. Nirjarā Anuprekṣā - Dissociation of karmas only through penance is beneficial in the path of salvation.

10. Loka Anuprekṣā - The six substances constitute this universe. They transform by their own nature and therefore one should not entertain the feeling of a doer, enjoyer or owner of worldly substances.

11. Bodhidurlabha Anuprekṣā - It is very rare to have intense inclination for undertaking penance, propagation of religion and to die with religious prescription (Samādhi). This generates a feeling and gives inducement for performance of penance, religious activities and religious death.

12. Dharmasvākhyātatva Anuprekṣā - Emancipation of soul is possible only through practice of vows, regulations, restraint, penance etc. This alone brings inner-happiness. As such one gets encouragement by these reflections for making efforts on such means.

परीषहों को सहन करने का उद्देश्य

Aim of endurance of afflictions

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।।८।।

(मार्ग–अच्यवन–निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।)

Mārgācyavananirjarārthaṁ Pariṣoḍhavyāḥ Parīṣahāḥ. (8)

शब्दार्थ : **मार्गाच्यवननिर्जरार्थम्** – मार्ग से च्युत न होने के लिये एवं निर्जरा के लिये; **परिषोढव्याः** – जो सहन करने योग्य हो; **परीषहाः** – (वे) परीषह (हैं)।

Meaning of Words : **Mārgācyavananirjarārtham** - for not to leave the path (of stoppage of karmas) and for dissociation of bound karmas; **Pariṣoḍhavyāḥ** - that which is worth endurance; **Parīṣahāḥ** - those are afflictions.

सूत्रार्थ : संवर के मार्ग से च्युत न होने के लिये और निर्जरा के लिये जो सहन करने के योग्य हों, वे परीषह हैं।

English Rendering : The activities which are worth endurance for not deviating from the path of stoppage of influx of karmas and for dissociation of bound karmas, are called afflictions.

टीका : मार्ग का अर्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इनका पालन करने से कर्मों का संवर और निर्जरा होती है। परीषहों को समतापूर्वक सहन करने से रत्नत्रय में दृढ़ता बनी रहती है और साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है। इसलिये इस सूत्र में परीषह सहनकर, कर्मों के संवर और निर्जरा करके अन्तिम लक्ष्य हेतु उस मार्ग पर चलते रहने का उपदेश दिया गया है।

Comments : 'Mārga' means right path, right knowledge and right conduct, practice of which leads to stoppage of influx (i.e. Saṁvara) and dissociation of karmas (Nirjarā). Conquering the afflictions with equanimity strengthens Ratnatraya and the votary attains success in reaching his destination. Therefore, in this Sūtra, it is preached that by conquering afflictions, stoppage of influx and attaing dissociation of bound karmas, one must continue to march on the path to reach the final destination.

परीषहों के नाम

Names of afflictions

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोश-वधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।।९।।

(क्षुत्-पिपासा-शीत-उष्ण-दंशमशक-नाग्न्य-अरति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्या-आक्रोश-वध-याचना-अलाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञा-अज्ञान-अदर्शनानि।)

Kṣutpipāsāśītoṣṇadaṁśamaśakanāgnyāratistrīcaryā-niṣadyāśayyākrośavadhayācanālābharogatṛṇa-sparśamalasatkārapuraskāraprajñājñānādarśanāni. (9)

शब्दार्थ : **क्षुत्पिपासा**– क्षुधा व तृषा; **शीतोष्ण** – शीत व उष्ण; **दंशमशक** – मच्छर आदि द्वारा पीड़ा पहुँचाना; **नाग्न्यारति** – नाग्न्य व अरति; **स्त्रीचर्या** – स्त्री व चर्या; **निषद्याशय्याक्रोश** – निषद्या, शय्या व आक्रोश; **वधयाचना** – वध व याचना; **अलाभरोग** – अलाभ व रोग; **तृणस्पर्शमल** – तृणस्पर्श व मल; **सत्कार–पुरस्कार** – सत्कारपुरस्कार; **प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि** – प्रज्ञा, अज्ञान व अदर्शन।

Meaning of Words : **Kṣutpipāsā** - hunger & thirst; **Śītoṣṇa** - cold & hot; **Daṁśamaśaka** - pain as a result of bite of mosquitoes etc.; **Nāgnyārati** - nakedness & dis-satisfaction; **Strīcaryā** - women & walking too much but to bear it calmly; **Niṣadyāśayyākrośa** - undisturbed meditation pose maintenance, sleeping & abuse; **Vadhayācanā** - hurting & begging; **Alābharoga** - lack of gain & disease; **Tṛṇasparśamala** - contact with thorny shrubs etc. & dirt; **Satkārapuraskāra** - reverence & honour; **Prajñājñānādarśanāni** - knowledge, ignorance & lack of faith.

सूत्रार्थ : क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन – ये (बाईस) परीषह हैं।

English Rendering : Hunger, thirst, cold, hot, pain resulting from bite of mosquitoes etc., nakedness, dis-satisfaction, women, walking too much, undisturbed meditational pose, sleep, abuse, hurt, begging, lack of gain, disease, contact with thorny shrubs etc., dirt, reverence & honour, knowledge, ignorance and lack of faith are twenty-two afflications.

टीका : सूत्र आठ की टीका में संवरमार्गरूप रत्नत्रय में दृढ़ता बनाये रखने के लिये परीषहों को सहन करने का कथन किया गया है। इस सूत्र में उन बाईस परीषहों के नामों का उल्लेख है, जो एक आत्मा को हो सकते हैं, और उन्हें जीतने से वे संवर को प्राप्त होते हैं। इनका सङ्क्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

१. **क्षुधा परीषह जय** – भूख की पीड़ा सहन करना।

२. **पिपासा परीषह जय** – प्यास की पीड़ा सहन करना।

३. **शीत परीषह जय** – शीत की बाधा सहन करना।

४. **उष्ण परीषह जय** – उष्णता की बाधा सहन करना।

५. **दंशमशक परीषह जय** – मच्छर आदि के प्रकोप को सहना।

६. **नाग्न्य परीषह जय** – नग्नता में शर्म का अनुभव नहीं करना।

७. **अरति परीषह जय** – विषय-भोगों के प्रति उदासीन बने रहना।

८. **स्त्री परीषह जय** – स्त्रियों द्वारा काम-क्रीड़ाओं के आकर्षण पर विजय प्राप्त करना।

९. **चर्या परीषह जय** – विहार में पद गमन से होने वाले कष्टों को समतापूर्वक सहन करना।

१०. **निषद्या परीषह जय** – विभिन्न आसनों में समतापूर्वक कष्ट सहन करना।

११. **शय्या परीषह जय** – जमीन, तख्त आदि पर एक करवट से विश्राम करने में जो कष्ट होता है, उसे समतापूर्वक सहन करना।

१२. **आक्रोश परीषह जय** – किसी के द्वारा अपमानित किये जाने पर क्रोध न आने देना।

१३. **वध परीषह जय** – यदि कोई मार-पीट कर कष्ट पहुँचाये तो उसके प्रति भी माध्यस्थ भाव रखना और परिणामों में समता बनाये रखना।

१४. **याचना परीषह जय** – यदि अत्यन्त आवश्यक भी हो तो भी याचना नहीं करना।

१५. **अलाभ परीषह जय** – किसी संसारी अनुकूल वस्तु (आहार आदि) के प्राप्त न होने पर भी परिणामों में समता बनाये रखना।

१६. **रोग परीषह जय** – आवश्यक औषधि और उपचार होने के बाद भी रोग में कमी न होने पर परिणामों को ठीक रखना।

१७. **तृणस्पर्श परीषह जय** – विहार करते समय पैरों में काँटे आदि लगने से जो पीड़ा हो, उसे समतापूर्वक सहन करना।

१८. **मल परीषह जय** – मलिन शरीर के कारण भावों में मलिनता न आने देना।

१९. **सत्कारपुरस्कार परीषह जय** – सत्कार, पुरस्कार या सम्मान मिले, ऐसा भाव न होने देना या मिलने पर भी समता भाव रखना।

२०. **प्रज्ञा परीषह जय** – अधिक ज्ञान होने का घमण्ड न आने देना।

२१. **अज्ञान परीषह जय** – ज्ञान प्राप्ति के प्रयत्न करने पर भी ज्ञान न होने की अवस्था में भी निराशा का भाव न आने देना।

२२. अदर्शन परीषह जय – तप करने के बावजूद इच्छित फल प्राप्त न होने पर दुःखी नहीं होना। (‘अन्य दर्शनवालों यानी परसमय से वाद–विवाद होने पर उसे समता से सहना’ – आचार्य विद्यासागरजी।)

Comments : Under the comments of Sūtra 8, for strengthening the Ratnatraya it is stated that one must conquer afflictions or calamities. In this Sūtra, names of twenty-two afflictions which may occur to a soul and on conquering these, the soul attains 'Saṁvara', are mentioned. Briefly these are as under -

1. Kṣudhā Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of hunger.

2. Pipāsā Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of thirst.

3. Śīta Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of cold.

4. Uṣṇa Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of heat.

5. Daṁśamaśaka Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of bite of mosquetos etc.

6. Nāgnya Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of shame due to nudity.

7. Arati Pariṣaha Jaya - Conquering affliction caused by absence of pleasure or due to disliking objects.

8. Strī Pariṣaha Jaya - Conquering affliction that may be caused due to sexual provocation by women.

9. Caryā Pariṣaha Jaya - Conquering affliction of the feeling of fatigue & other obstructions occuring during travelling etc.

10. Niṣadyā Pariṣaha Jaya - Conquering affliction with equanimity arising out of different kinds of meditational poses.

11. Śayyā Pariṣaha Jaya - Conquering with equanimity the afflicition caused due to taking rest on ground or wooden planks sleeping with one side body posture.

12. Ākrośa Pariṣaha Jaya - Not to become angry even when humiliation or provocation is made by others.

13. Vadha Pariṣaha Jaya - If some-one tries to hurt, even then to keep neutral thoughts about him and maintain equipoise.

14. Yācanā Pariṣaha Jaya - Not to demand any thing even when it may be very very essential to do so.

15. Alābha Pariṣaha Jaya - To keep equanimity even when one does not get desired things like meals etc.

16. Roga Pariṣaha Jaya - To maintain equanimity even when there is no relief from disease by proper medication and care.

17. Tṛṇasparśa Pariṣaha Jaya - To conquer with equanimity the pain that may arise due to prick of thorns etc. while moving.

18. Mala Pariṣaha Jaya - Not to have disgusting thoughts due to dirty body.

19. Satkārapuraskāra Pariṣaha Jaya - Not to have a desire for name & fame, reverence or respect etc., if it is gained not to be delighted.

20. Prajñā Pariṣaha Jaya - Not to feel proud of one's superior knowledge.

21. Ajñāna Pariṣaha Jaya - Not to feel disappointment even in failure to attain the knowledge inspite of the best efforts.

22. Adarśana Pariṣaha Jaya - Not to have distress even when one does not get desired result of his penance. ('To have equanimity when confronted with other philosophies based on wrong belief ' - Ācharya Vidyāsāgaraji).

किस चारित्र में कितने परीषह

Number of afflictions in a particular conduct

सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।।१०।।

(सूक्ष्म-साम्पराय-छद्मस्थ-वीतरागयोः चतुः-दश।)

Sūkṣmasāmparāyacchadmasthavītarāgayośdcaturdaśa. (10)

शब्दार्थ : **सूक्ष्मसाम्पराय-** सूक्ष्मसाम्पराय; **छद्मस्थवीतरागयोः -** (और) छद्मस्थ वीतराग में; **चतुर्दश -** चौदह (परीषह होते हैं)।

Meaning of Words : **Sūkṣmasāmparāya** - Sūkṣmasāmparāya; **Chadmasthavītarāgayoḥ** - Chadmastha vītarāga. **Caturdaśa** - fourteen (afflictions).

सूत्रार्थ : सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग चारित्र के धारण करनेवालों में चौदह परीषह सम्भव हैं।

English Rendering : Fourteen affliction may occur in the case of those saints whose conduct is in conformity with gleaming passions and those in Chadmasthavītarāga state.

टीका : ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनियों को मोहनीय कर्मों का क्रमशः उपशम एवं क्षय हो जाने से वे वीतराग अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। दसमें गुणस्थानवर्ती साधुओं को यद्यपि लोभ सञ्ज्वलन कषाय का उदय रहता है, पर वह भी अति सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म कषायों की वहाँ मात्र शक्तिरूप विद्यमान अवस्था है, क्योंकि वे तो ध्यानस्थ ही रहते हैं, इसलिये वे भी वीतराग छद्मस्थ के समान ही होते हैं। अतः दसवें से बारहवें गुणस्थानवाले मुनियों में निम्न चौदह परीषह सम्भव हैं – क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, अलाभ, रोग, तृण स्पर्श, मल, प्रज्ञा और अज्ञान।

Comments : The monks dwelling in eleventh and twelfth stages of spiritual development are beyond attachment and aversion as they have either subsided or destroyed their deluding karmas. Although monks dwelling in tenth stage of spiritual development have mere rise of gleaming passions, that too very minute and it is mere presence of the deluding karmas as the monk remains in meditation in this stage, as such they are also like a 'Vītarāga Chadmastha'. Therefore fourteen following afflictions may occur to the monks dwelling from tenth to twelfth stages of spiritual development - hunger, thirst, cold, heat, insect bite, movement, uncomfortable bedding, injury, lack of gain, illness, pricking pain, dirt, learning & ignorance.

केवली भगवान् में होने वाले परीषह
Afflictions possible by embodied Omniscient

एकादश जिने।।११।।

(एकादश जिने।)

Ekādaśa Jine. (11)

शब्दार्थ : **एकादश** – ग्यारह (परीषह); **जिने** – जिन (भगवान्) में।

Meaning of Words : **Ekādaśa** - eleven (afflictions); **Jine** - in embodied omniscient.

सूत्रार्थ : जिन भगवान् में ग्यारह परीषह सम्भव हैं।

English Rendering : Eleven afflictions may occur to the embodied omniscient.

टीका : जिन यानी केवली भगवान् में वेदनीय कर्म के विद्यमान रहने से उपचार से निम्न ग्यारह परीषहों का अस्तित्व होता है – क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल। यहाँ केवल द्रव्य कर्म के सद्भाव की अपेक्षा से परीषहों का कथन उपचार से है। केवलज्ञान होने पर केवली भगवान् के शरीर में निगोदिया और त्रस जीव नहीं रहते, क्योंकि वे परम–औदारिक शरीर को धारण करते हैं। अतः भूख, प्यास और रोग आदि की बाधा उन्हें नहीं होती। तेरहवें गुणस्थान में असाता वेदनीय का उदय इतना बलवान् नहीं होता कि उन्हें क्षुधा आदि की वेदना हो। असाता वेदनीय की उदीरणा छठवें गुणस्थान तक ही होती है। इसलिये असाता वेदनीय कर्म का उदय इस प्रकार की वेदना नहीं कर सकता। फिर, दसवें गुणस्थान के पश्चात् कर्मों के उदय के साथ निर्जरा भी असङ्ख्यातगुणी होती रहती है, अतः केवली भगवान् को परीषह नहीं होते।

Comments : Due to presence of feeling producing karma in Kevalī omniscient is figuratively may have following eleven afflictions - hunger, thirst, cold, heat, insect bite, movement, uncomfortable bedding, injury, disease, pricking pain and dirt. Here the figurative mention of affliction is in the context of presence of matter karmas. On attainment of omniscience, their body turns as supremely pure (Parama Audārika), free from micro-organism (Nigodiyā) and mobile living beings. As such they do not get hunger, thirst etc. or suffer from dieases. In the thirtenth stage of spiritual development, the rise of pain-feeling karma is not strong enough to generate hunger etc. Rise of pre-nature (Udīraṇā) pain-feeling karma is only up to sixth stage of spiritual development. Therefore rise of pain-feeling karma can not be the cause of such sufferings. Moreover, after tenth stage of spiritual development, dissociation of karmas is also in-numerable times and as such omniscients do not suffer any afflictions.

बादरसाम्पराये सर्वे।।१२।।

(बादर–साम्पराये सर्वे।)

Bādarasāmparāye Sarve. (12)

शब्दार्थ : **बादरसाम्पराये** – बादर साम्पराय में; **सर्वे** – सभी (परीषह)।

Meaning of Words : **Bādarasāmparāye** - up to Bādara Sāmparāya stage; **Sarve** - all (afflictions).

सूत्रार्थ : बादर साम्पराय में साधुओं को सभी परीषह होना सम्भव हैं।

English Rendering : All afflictions may occur to the monks with gross passions.

टीका : साम्पराय कषाय को कहते हैं। जिनमें साम्पराय बादर होता है, ऐसे सभी साधुओं को सभी परीषह होना सम्भव है। सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहार–विशुद्धि संयम – इनमें से प्रत्येक में सभी परीषह सम्भव हैं।

यहाँ यह उल्लेख अभीष्ट है कि वैसे बादर साम्पराय अनिवृत्तिकरण नामक नौवें गुणस्थान का दूसरा नाम है। चूँकि नौवें गुणस्थान तक स्थूल कषाय का सद्भाव होता है, इसलिये इस गुणस्थान का नाम बादर साम्पराय भी है। चूँकि नौवें गुणस्थान में दर्शन मोहनीय का उदय न होने से बाईस परीषह होना सम्भव ही नहीं है। दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं। उनमें से सम्यक्त्व मोहनीय का उदय सातवें गुणस्थान तक ही सम्भव है; यहीं तक वेदक सम्यक्त्व होता है, इसलिये सप्तम गुणस्थान तक ही सभी परीषह स्थूल कषाय के सद्भाव में सम्भव हैं। यही इस सूत्र का आशय है।

Comments : 'Sāmparāya' means passions. The monks who possess gross passions are called 'Bādara Sāmparāya' and it is possible that all kinds of afflictions may occur to them. All kinds of afflictions may occur to those who are practising conduct in the form of 'Sāmāyika', 'Chedopasthāpanā' and 'Parihāraviśuddhi'.

It may be worth mentioning here that Bādara Sāmparāya is the other name of the ninth stage of spiritual development i.e. 'Anivṛttikaraṇa'. Gross passions are found amongst the monks dwelling up to ninth stage of spiritual development and therefore the name of this stage is also 'Bādara Sāmparāya'. There is no rise of perception deluding karma in the ninth stage of spiritual development and therefore it is not possible that all twenty-two afflictions occur. There are three sub-kinds of perception deluding karma. Out of them, the rise of right faith perception deluding karma is possible only up to seventh stage of spiritual development; only up to this stage, destructive-subsidential right belief manifess and therefore only up to this stage, owing to gross passions, it is possible that all afflictions may occur. This is the essence of this Sūtra.

ज्ञानावरण कर्म के उदय से होने वाले परीषह

Affliction due to knowledge deluding karma

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।।१३।।

(ज्ञानावरणे प्रज्ञा–अज्ञाने।)

Jñānāvaraṇe Prajñājñāne. (13)

शब्दार्थ : **ज्ञानावरणे –** ज्ञानावरण (कर्म के उदय) में; **प्रज्ञाज्ञाने –** प्रज्ञा और अज्ञान (परीषह)।

Meaning of Words : **Jñānāvaraṇe -** on fruition of knowledge obscuring karma; **Prajñājñāne -** (conceit of) knowledge and ignorance.

सूत्रार्थ : ज्ञानावरण कर्म के उदय में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं।

English Rendering : Conceit of knowledge & ignorance affliction occur as a result of fruition of knowledge obscuring karma.

टीका : यद्यपि ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से ही प्रज्ञा या विशेष ज्ञान का प्राप्त होना पाया जाता है, भले ही क्षयोपशम निमित्तक पूर्ण ज्ञान उसे नहीं है फिर भी ज्ञानी व्यक्ति को अपने ज्ञान का मद हो सकता या हो जाता है। इसलिये यहाँ प्रज्ञा परीषह को भी ज्ञानावरण के कारण कहा गया है। अज्ञान परीषह तो ज्ञानावरण कर्म के उदय में होता ही है।

Comments : Although extra-ordinary knowledge is attained on the rise of destructive-cum-subsidential knowledge covering karma but such attainment of knowledge is not complete and the knower may feel the proud of his knowledge and therefore here Prajñā Pariṣaha is also said to be because of knowledge obscuring karma. Ajñāna Parīṣaha is surely due to rise of knowledge-obscuring karma.

दर्शन मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों के उदय से होने वाले परीषह
Afflictions due to manifestation of faith
deluding & Obstructive karmas

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ।।१४।।

(दर्शन-मोह-अन्तराययोः अदर्शन-अलाभौ।)

Darśanamohāntarāyayoradarśanālābhau. (14)

शब्दार्थ : **दर्शनमोहान्तराययोः –** दर्शन मोहनीय और अन्तराय (कर्म के सद्भाव में); **अदर्शनालाभौ –** अदर्शन और अलाभ (परीषह)।

Meaning of Words : **Darśanamohāntarāyayoḥ** - faith deluding & obstructive karma (in presence of); **Adarśanālābhau** - lack of faith and lack of gain (afflictions).

सूत्रार्थ : दर्शन मोहनीय के उदय में अदर्शन और अन्तराय कर्म के उदय में अलाभ परीषह होते हैं।

English Rendering : On rise of faith deluding karma, there happens to be non-faith affliction and or rise of obstructive karma there happens to be lack of gain affliction.

टीका : दर्शन मोहनीय से यहाँ सम्यक्त्व मोहनीय का कथन है, जिसके उदय में चल, मल और अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं। सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के उदय में क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के रहते हुए भी आप्त, आगम और पदार्थों के विषय में नाना विकल्प होना चल दोष है। मल का अर्थ मैल है। शङ्का आदि दोषों के निमित्त से सम्यग्दर्शन का मलिन होना मल दोष है। अगाढ़ का अर्थ स्थिर न रहना है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव लौकिक प्रयोजनवश कदाचित् तत्त्व से चलायमान होने लगता है। इसी को ध्यान में रखकर यहाँ दर्शन मोहनीय को अदर्शन परीषह के लिये कारण कहा गया है। भोजन आदि पदार्थ के न मिलने पर जिसके अलाभ रूप परिणाम होते हैं, उसका वह परिणाम लाभान्तराय कर्म का कार्य होने से अलाभ को लाभान्तराय कर्म का कार्य कहा है।

Comments : Under faith deluding karma, here it is in the context of right faith deluding; rise of which is accompanied with unsteadiness, filth and unstable thoughts. Owing to rise of right belief faith deluding karma, even when destructive-cum-subsidential right faith manifests, there could be several kinds of doubts in respect of Āpta (omniscient), Āgama (ancient religious scriptures based on preachings of omniscient) and Realities. Such infirmity is known as 'Cala Doṣa'. 'Mala' means filth. Owing to doubts, the right faith may get polluted and it is called 'Mala Doṣa'. 'Agāḍha' means not to be steady. Such a right-believer may sometimes become unsteady for the sake of mundane purposes. Keeping in mind this aspect, faith deluding karma is said to be the cause of 'Adarśana Pariṣaha' Where there is lack of gain of meals etc.; an ascetic has the volitions of non-gain. As such non-gain is the result of gain-obstructive karma i.e. Alābha which is due to manifestation of gain-obstructive karma.

चारित्र मोहनीय के उदय से होने वाले परीषह

Afflictions due to manifestation of Conduct deluding karma

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः ।।१५।।

(चारित्रमोहे नाग्न्य–अरति–स्त्री–निषद्या–आक्रोश–याचना–सत्कारपुरस्काराः।)

Cāritramohe Nāgnyāratistrīniṣadyākrośayācanāsatkāra-puraskārāḥ. (15)

शब्दार्थ : **चारित्रमोहे** – चारित्र मोहनीय (के उदय) में; **नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कारपुरस्काराः** – नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार (परीषह)।

Meaning of Words : **Cāritramohe** - on fruition of conduct deluding karma; **Nāgnyāratistrīniṣadyākrośayācanāsatkārapuraskārāḥ** - nakedness, dis-satisfaction, women, meditational poses, abuse, begging and reverence & honour (afflictions).

सूत्रार्थ : चारित्रमोहनीय के उदय में नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार परीषह होते हैं।

English Rendering : Nackedness, dis-satisfaction, women, meditational poses, abuse, begging and reverence & honour afflictions occur due to rise of conduct deluding karma.

टीका : मान कषाय नामक चारित्र मोहनीय के उदय में नाग्न्य, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कारपुरस्कार परीषह होते हैं। अरति नामक नो–कषाय के उदय से अरति परीषह होता है। पुरुष–वेद नामक नो–कषाय के उदय से स्त्री परीषह होता है। निषद्या परीषह भी प्राणी पीड़ा की मुख्यता होने से चारित्र मोहनीय निमित्तक माना गया है, क्योंकि मोह के उदय से ही प्राणी को पीड़ा रूप परिणाम होते हैं।

Comments : The cause of afflictions of Nāgnya (nudity), Niṣadyā (meditational posture), Ākrośa (anger), Yācanā (begging) and Satkāra-puraskāra (name & fame, reverence, respect etc.) is the rise of pride passion of conduct deluding karma. Dis-liking affliction occurs on rise of dis-liking quasi-passions. Female attraction affliction occurs due to rise of male-sex qnasi-passions. Affliction due to discomfort in meditational postures is mainly body discomfort feeling and hence is said to be due to conduct deluding karma rise as body pain is felt only due to delusion.

वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले परीषह
Afflictions due to rise of feeling producing karma

वेदनीये शेषाः।।१६।।

Vedanīye Śeṣāḥ. (16)

शब्दार्थ : **वेदनीये** – वेदनीय (कर्म के उदय) में; **शेषाः** – शेष (परीषह)।

Meaning of Words : **Vedanīye** - (on fruition of) feeling karma; **Śeṣāḥ** - remaining (afflictions).

सूत्रार्थ : शेष परीषह वेदनीय कर्म के उदय होने पर होते हैं।

English Rendering : The remaining afflictions occur on fruition of feeling producing karma.

टीका : क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृण–स्पर्श और मल – ये ग्यारह परीषह वेदनीय कर्म के उदय होने पर होते हैं।

शरीर में भोजन अथवा पानी का कम होना, कण्ठ का सूखना, ऋतु में ठण्ड या गर्मी का होना, डाँस–मच्छर का काटना, गमन या शयन करते समय कण्टक आदि का चुभना, किसी के द्वारा मारना या गाली–गलौज करना, शरीर में रोग का होना, तृण आदि का चुभना और शरीर पर मल आदि का जमा होना इत्यादि अपने–अपने कारणों से होते हैं। इनका कारण वेदनीय कर्म का उदय नहीं है, परन्तु इन कार्यों के होने पर जो वेदना होती है, वह वेदनीय कर्म का कार्य है।

Comments : The remaining following eleven afflictions occur due to rise of feeling producing karma - hunger, thirst, cold, heat, insect-bite, movement, uncomfortable bedding, injury, disease, pricking pain and dirt.

Lack of food or water, dryness of the throat, feeling cold or heat depending on the corresponding season, insect-bite, pricking during movement or rest, injury inflicted by others, abuse by others, suffering from illness, pricking pain and dirty body etc. do happen due to their own causes. These do not happen due to rise of feeling producing karma but the suffering felt due to these happening is due to rise of feeling producing karma.

एक आत्मा में एक समय में हो सकने वाले परीषह
Afflictions possible simultaneously for one soul at one time

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः।।१७।।

(एक-आदयः भाज्याः युगपत् एकस्मिन् आ एकोनविंशतेः।)

Ekādayo Bhājyā Yugapadekasminnkonaviṁśateḥ. (17)

शब्दार्थ : **एकादयः** – एक को आदि लेकर; **भाज्याः** – भजनीय; **युगपत्** – एक साथ; **एकस्मिन्** – एक आत्मा में; **आ** – तक; **एकोनविंशतेः** – उन्नीस (परीषह)।

Meaning of Words : **Ekādayaḥ** - starting from one; **Bhājyāḥ** - possible; **Yugapat** - simultaneously; **Ekasmin** - in one soul; **Ā** - up to; **Ekonaviṁśateḥ** - nineteen (afflictions).

सूत्रार्थ : एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर उन्नीस तक परीषह विकल्प से हो सकते हैं।

English Rendering : One soul may undergo simultaneously one to nineteen afflictions at a time.

टीका : एक आत्मा में एक समय में उष्ण और शीत में से एक ही परीषह सम्भव है। इसी प्रकार शय्या, निषद्या और चर्या में से एक समय में एक ही परीषह सम्भव है। अतः एक साथ एक समय में किसी साधु को अधिकतम उन्नीस परीषह तक हो सकते हैं।

Comments : A soul can suffer either cold or heat affliction at a given instant. Similarly, at a particular instant, only one affliction is possible to occur out of Śayyā, Niṣadyā and Caryā. As such a monk may have maximum up to nineteen affliction at a particular instant.

चारित्र के प्रकार
Kinds of Conduct

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराय-
यथाख्यातमिति चारित्रम्।।१८।।

(सामायिक-छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-
यथाख्यातं इति चारित्रम्।)

Sāmāyikacchedopasthāpanāparihāraviśuddhi-sūkṣmasāmparāyayathākhyātamiti Cāritram. (18)

शब्दार्थ : **सामायिक** – सामायिक; **छेदोपस्थापना** – छेदोपस्थापना; **परिहारविशुद्धि** – परिहारविशुद्धि; **सूक्ष्मसाम्पराय** – सूक्ष्मसाम्पराय; **यथाख्यातम्** – यथाख्यात; **इति** – और; **चारित्रम्** – चारित्र (है)।

Meaning of Words : **Sāmāyika**-equanimity; **Chedopasthāpanā** - Chedopasthāpanā, i.e. reinitiation; **Parihāraviśuddhi** - purity of non-injury; **Sūkṣmasāmparāya** - slight passions; **Yathākhyātam** - perfect conduct; **Iti** - and; **Cāritram** - are conduct.

सूत्रार्थ : सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात – यह पाँच प्रकार का चारित्र है।

English Rendering : Equanimity, reinitiation, purity of non-injury, slight passions and perfect conduct are five kinds of conduct.

टीका : बाह्य में पापों से निवृत्ति और अन्तरङ्ग में कषायों का अभाव होना चारित्र है। यद्यपि चारित्र के अनेक भेद-प्रभेद हैं, लेकिन मुख्य रूप से यहाँ चारित्र के पाँच भेद कहे गये हैं –

१. सामायिक चारित्र – आत्मा में लीन होकर सभी प्रकार की हिंसा आदि क्रियाओं के विकल्प से मुक्त होकर राग-द्वेष-मोह आदि को छोड़कर ध्यान करना या षट् आवश्यकों का समीचीन रूप से पालन करना सामायिक चारित्र है।

२. छेदोपस्थापना चारित्र – आवश्यक क्रियाओं में प्रमादवश व्यक्त या अव्यक्त दोष लगने पर प्रायश्चित्त कर पुनः समता की स्थापना करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

साधु के सामायिक और छेदोपस्थापना रूप दोनों चारित्र छठवें से नौवें गुणस्थान तक होते हैं।

३. परिहारविशुद्धि चारित्र – इस प्रकार का चारित्र सामान्यतया उन साधुओं को होता है जो तीस वर्ष की आयु तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर दीक्षा लेते हैं। वे तीन वर्ष से अधिक और नौ वर्ष से कम वर्ष रूप पृथक्त्व काल तक प्रत्याख्यान पूर्व को तीर्थङ्कर के पादमूल में रहकर पढ़ते हैं; वे प्रतिदिन दोनों सन्ध्याकालों को छोड़कर बिना किसी जीव को कष्ट पहुँचाये कम से कम दो कोश गमन करते हैं। यह चारित्र छठवें एवं सातवें गुणस्थान में होता है।

४. सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र – इस चारित्र के धारक को केवल सूक्ष्म लोभ का उदय रहता है तथा शेष सभी कषायों का उपशम या क्षय हो जाता है। यह चारित्र दसवें गुणस्थान में ही होता है।

सातवें गुणस्थान से ऊपर श्रेणी चढ़ने के दो क्रम हैं – एक वे साधक, जो कर्मों का क्रमशः उपशम कर उपशमक श्रेणि पर आरोहण करते हैं और दूसरे वे, जो कर्मों का क्रमशः क्षय करते हुए क्षपक श्रेणी पर आरोहण करते हैं। जो कर्मों का क्षय करते हुए आरोहण करते हैं वे दसवें गुणस्थान से सीधे बारहवें गुणस्थान में पहुँचते हैं। लेकिन जो कर्मों का उपशम करते हैं, वे दसवें से ग्यारहवें गुणस्थान में पहुँचते हैं। सत्ता में स्थित उपशमित कर्म जब उदय में आते हैं तो साधक नीचे के गुणस्थानों में क्रमशः आता-जाता है। उसे पुनः अपने कर्मों का क्षय करने हेतु क्षपक श्रेणि आरोहण करना होती है। सूक्ष्म लोभ सम्बन्धी भावना दसवें गुणस्थान में दोनों साधकों की अलग-अलग प्रकार की होगी।

५. यथाख्यात चारित्र – सभी कषायों के उपशम अथवा क्षय होने पर जो चारित्र होता है, वह यथाख्यात चारित्र कहलाता है। यथाख्यात चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

सूत्र में आया हुआ 'इति' पद परिसमाप्ति अर्थ में जाना जाता है। इससे यथाख्यात चारित्र से समस्त कर्मों के क्षय की परिसमाप्ति होती है, यह जाना जाता है।

Comments : Externally refraining from sinful activities and internally absence of passions is 'Cāritra' or conduct. Although conduct is of many kinds & sub-kinds but here five main kinds are described -

1. Sāmāyika Cāritra - Remaining engrossed in meditation in the nature of self and by refraining from all kinds of sinful thoughts &

activities and by giving up attachment & aversion or practising in a righteous manner the six essentials is Sāmāyika Cāritra.

2. Chedopasthāpanā Cāritra - Sometimes owing to carelessness, knowingly or unknowingly the ascetic may deviate from his vows. When he is installed again in his vows after due expiation, it is called Chedopasthāpanā Cāritra or reinitiation.

A monk dwells in both Sāmāyika & Chedopasthāpanā Cāritras from sixth to ninth stages of spiritual development.

3. Parihāraviśuddhi Cāritra - Such a conduct manifests in those who are initiated as monks after thirty years of their happy family life. They study Pratyākhyāna Pūrva under the pious close proximity of the feet of a Tīrthaṅkara omniscient for a period of more than three years but less than nine years. They travel minimum distance of two Kośas without causing any injury to any living organism every day except the two transition periods. Monks in Parihāraviśuddhī Cāritra dwell in sixth & seventh stages of spiritual development.

4. Sūkṣmasāmparāya Cāritra - Those who practice this kind of conduct have existence of only very minute rise of greed and all other kinds of passions are either subsided or destroyed. This kind of conduct is found only in the tenth stage of spiritual development.

From seventh stage of spiritual development, there are two ways of rising up in spiritual development - one way is followed by those who subside their karmas gradually and rise the subsidence ladder and the other is followed by those who destroy their karmas - and rise the destructive ladder. Those who destroy their karmas, move directly to the twelfth stage from tenth stage of spiritual development but those who subside their karmas move to eleventh stage from the tenth stage of spiritual development. When the subsided karmas manifest their rise, the votary falls down to the lower stages gradually. He has to make an attempt to destroy his karmas and rise in destructive ladder. The volitional state of both types of votaries in the tenth stage of spiritual development of minute greed passions is different.

5. Yathākhyāta Cāritra - The conduct attained on subsidence or destruction of all kinds of passions is Yathākhyāta Cāritra. It is found from eleventh stage to fourteenth stage of spiritual development.

The word 'Iti' in the Sūtra is indicative of completion. That is, it indicates that by perfect conduct follows the total destruction of all karmas.

बाह्य तप का कथन

Description of external Penance

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसङ्ख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकाय–
क्लेशा बाह्यं तपः।।१९।।

(अनशन–अवमौदर्य–वृत्तिपरिसङ्ख्यान–रसपरित्याग–विविक्तशय्यासन–
कायक्लेशाः बाह्यं तपः।)

Anaśanāvamaudaryavṛttiparisaṅkhyānarasaparityāga-
viviktaśayyāsanakāyakleśā Bāhyaṁ Tapaḥ. (19)

शब्दार्थ : **अनशन** – अनशन; **अवमौदर्य**– अवमौदर्य; **वृत्तिपरिसङ्ख्यान** – वृत्तिपरिसङ्ख्यान; **रसपरित्याग** – रसपरित्याग; **विविक्तशय्यासन** – विविक्त–शय्यासन; **कायक्लेशाः** – कायक्लेश; **बाह्यं तपः** – (यह छह प्रकार का) बाह्य तप (है)।

Meaning of Words : **Anaśana** - fasting; **Avamaudarya** - reduced diet; **Vṛttiparisaṅkhyāna** - special restrictions or resolution in the process of meals; **Rasaparityāga** - giving up stimulating juicy food articles; **Viviktaśayyāsana** - isolated habitation; **Kāyakleśāḥ** - mortification of body; **Bāhyaṁ Tapaḥ** - is six kinds of external penance.

सूत्रार्थ : अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसङ्ख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश – यह छह प्रकार का बाह्य तप है।

English Rendering : Fasting, reduced meals acceptance, special resolutions for acceptance of meal, giving up stimulating juicy food items, isolated resting & meditational places and mortification of body are six kinds of external penance.

टीका : किसी सांसारिक सुख की आकाङ्क्षा किये बिना कर्मों के क्षय के उद्देश्य से, ध्यान और आगम बोध की प्राप्ति के लिये आहार का त्याग करना अनशन तप है। संयम को जागृत रखने, दोषों के प्रशम करने, सन्तोष और स्वाध्याय आदि की सुखपूर्वक सिद्धि के लिये अपने आहार में एक, दो आदि ग्रास कम आहार ग्रहण करना अवमौदर्य तप है। गली, घर आदि के विषय में प्रवृत्ति करने को वृत्ति कहते हैं तथा इसके नियम करने को सङ्ख्या कहते हैं। यह वृत्तिपरिसङ्ख्यान तप कहलाता है। आहार के इच्छुक मुनि का एक घर आदि विषयक सङ्कल्प अर्थात् चिन्ता का अवरोध करना वृत्तिपरिसङ्ख्यान तप है। आशा की निवृत्ति इसका फल जानना चाहिए। घी, दूध आदि रसों का त्याग करना रस परित्याग तप है। इन्द्रियों के दर्प पर विजय प्राप्ति के लिये, निद्रा पर विजय पाने के लिये और सुखपूर्वक स्वाध्याय की सिद्धि के लिये रसपरित्याग किया जाता है। एकान्त एवं पवित्र स्थान में शयन करना तथा बैठना विविक्तशय्यासन तप है। एकान्त, जन्तुओं की पीड़ा से रहित शून्य घर आदि में निर्बाध ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय और ध्यान आदि की प्रसिद्धि के लिये संयत को शय्यासन लगाना चाहिए। आगमानुसार उचित क्लेशों से शरीर का दमन करना कायक्लेश तप है। आतापन योग, वृक्ष के मूल में निवास, निरावरण शयन और नाना प्रकार के प्रतिमा योग धारण एकान्त स्थान इत्यादि में यह किया जाता है। यह दुःख सहन करने के लिये, सुखपूर्वक रहने की भावना को कम करने के लिये और प्रवचन प्रभावना के लिये किया जाता है।

चूँकि यह तप बाह्य में दृष्टिगोचर होता है या बाह्य द्रव्य के आलम्बन से होता है, इसलिये इसे बाह्य तप कहा जाता है। अन्तरङ्ग तप की विशुद्धि बढ़ाने में बाह्य तप सहायक होता है।

परीषह दूसरों के कारण से होते हैं, लेकिन बाह्य तप कर्मों की निर्जरा के उद्देश्य से स्वयं किये जाते हैं, यही दोनों में मुख्य भेद है।

Comments : Renouncing of meals for the purpose of destruction of karmas, meditation and scriptural knowledge without any desire for

temporal benefit is fasting penance. Diminished or reduced diet by one, two etc. morsels is intended to develope constant vigilance regarding self-control, for supression of evils, for contentment and to study with ease. Limiting streets, houses etc. for meals taking process is known as 'Vṛtti' and decision about their numbers is known as 'Saṁkhyā' . The purpose is to conquer desires by this penance. This is known as 'Vṛttiparisaṅkhyāna' penance. Special restrictions consist in limiting the number of houses etc. for begging food, intended for overcoming desire is 'Vṛttiparisaṅkhyāna' penance. To give up stimutating and delicious food items such as Ghī, milk etc. is 'Rasa Parityāga' penance. It is intended to curb the excitement caused by senses to overcome sleep and to facilitate study. To take rest or stay in a lonely and pure or contamination-free place is 'Vivikttaśayyāsana' penance. The ascetic has to make his abode in lonely places or houses which are free from insect afflictions, in order to maintain uninterrupted celibacy, study, meditation etc. Mortification of body as prescribed in scriptural codes is 'Kāyakleśa' penance. It is performed by meditational standing in the sun, dwelling under trees, sleeping in an open place without any covering and to practise different meditational postures. The object of this is to cultivate a habit of patient endurance of body-pain and sufferings in order to remove attachment to pleasures and to preclaim the glory of the teachings of the omniscient.

The difference between afflictions and external penance is that afflictions are caused by others whereas external penances are performed by self for dissociation of karmas. This is the main difference between the two.

अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप का कथन
Description of Internal Penance

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।२०।।

(प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानानि उत्तरम्।)

Prāyascittavinayavaiyāvṛttyasvādhyāyavyutsarga-dhyānānyuttaram. (20)

शब्दार्थ : प्रायश्चित्त– प्रायश्चित्त; **विनय –** विनय; **वैयावृत्त्य –** वैयावृत्त्य; **स्वाध्याय –** स्वाध्याय; **व्युत्सर्ग –** व्युत्सर्ग; **ध्यानानि –** ध्यान; **उत्तरम् –** उत्तर (अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप है)।

Meaning of Words : **Prāyaścitta** - expiation; **Vinaya** - reverence; **Vaiyāvṛttya** - service to the religious fellow - beings; **Svādhyāya** - study of scriptures; **Vyutsarga** - renunciation; **Dhyānāni** - meditation; **Uttaram** - second (Internal penance).

सूत्रार्थ : प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान – यह छह प्रकार का अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप है।

English Rendering : Expiation, reverence, service, study of scriptures, renunciation and meditation are six kinds of internal penance.

टीका : पूर्व में किये अपराधों का शोधन करना प्रायश्चित्त है या प्रमादजन्य दोष का परिहार करना प्रायश्चित्त है। नम्र वृत्ति का होना विनय है या पूज्य पुरुषों का आदर करना विनय है। अपनी शक्ति के अनुसार उपकार करना, शरीर की चेष्टा द्वारा या दूसरे द्रव्य द्वारा उपासना करना वैयावृत्त्य है। आलस्य का त्याग कर सिद्धान्त आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना या ज्ञान की आराधना करना स्वाध्याय है। अहङ्कार और ममकार रूप सङ्कल्प का त्याग करना या उपधि का त्याग करना व्युत्सर्ग है। एक विषय पर चिन्ता का निरोध या चित्त के विक्षेप का त्याग करना ध्यान है। मन का नियमन करने वाले होने से इसे अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप कहा है अथवा यह तप बाह्य द्रव्यों की अपेक्षा नहीं रखता, इसलिये इसे अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप कहा है।

Comments : Expiation is the process of purification of sins committed previously or removal of sins committed by negligence. To be modest or to be humble is 'Vinaya' or reverence to the holy personnage is 'Vinaya'. 'Vaiyāvṛttya' is rendering service according to one's capacity to the saints or to help them in difficulty by bodily activity or with

things. Contemplation of knowledge or giving up sloth or idleness while reading scriptures is study. To give up arrogance and egoism or to give up external and internal attachment is 'Vyutsarga' or renunciation. controlling rambling of mind or concentration on one subject is meditation. As these kinds of penance regulate or restrain the mind, these are known as internal penance or these kinds are not dependent on any external conditions and as such these are known as internal penance.

अन्तरङ्ग तप के भेद
Kinds of Internal Penance

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।।२१।।

(नव-चतुः-दश-पञ्च-द्वि-भेदाः यथाक्रमं प्राक् ध्यानात्।)

Navacaturdaśapañcadvibhedā Yatākramaṁ Prāgdhyānāt. (21)

शब्दार्थ : **नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदाः** – नौ, चार, दश, पाँच और दो भेद; **यथाक्रमम्** – क्रमशः; **प्राग्ध्यानात्** – ध्यान से पहले तक (अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप के भेद हैं)।

Meaning of Words : **Navacaturdaśapañcadvibhedāḥ** - nine, four, ten, five and two; **Yathākramam** - respectively (or in that order); **Prāgdhyānāt** - before or prior to the meditational internal penance (are kinds.)

सूत्रार्थ : ध्यान से पहले तक अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप के क्रमशः नौ, चार, दश, पाँच और दो भेद हैं।

Rendering : Prior to meditation, the internal penance are of nine, four, ten, five and two kinds respectively.

टीका : ध्यान से पहले तक के जिस अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप का कथन पिछले सूत्र में किया गया है, वे हैं – प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग।

सूत्र में 'यथाक्रमम्' पद से प्रायश्चित्त के नौ, विनय के चार, वैयावृत्त्य के दश, स्वाध्याय के पाँच और व्युत्सर्ग के दो भेद होते हैं। इनका वर्णन आगे के सूत्रों में किया जा रहा है। ध्यान भी अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप का अन्तिम भेद है। चूँकि उसके सम्बन्ध में पृथक्, विस्तृत कथन आगे किया जाना है, इसलिये उसे यहाँ सूत्र में नहीं रखा है।

Comments : Prior to meditation, the kinds of internal penance described in the previous Sūtra are expiation, reverence, service to the saints, study and renunciation. The use of the word 'Yathākramam' or respectively means that expiation is of nine kinds, reverence is of four kinds, service to the saints is of ten kinds, study is of five kinds and renunciation is of two kinds. These are being described in the following Sūtras. Meditation is the last kind of internal penance. As it is to be detailed separately in the following Sūtras, it is not mentioned here.

प्रायश्चित्त तप के भेद

Kinds of Expiation Penance

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेद–परिहारोपस्थापनाः।।२२।।

(आलोचन–प्रतिक्रमण–तत्–उभय–विवेक–व्युत्सर्ग–तपः–छेद–परिहार–उपस्थापनाः।)

Ālocanapratikramaṇatadubhayavivekavyutsarga-tapaśchedaparihāropasthāpanāḥ. (22)

शब्दार्थ : **आलोचन –** आलोचना; **प्रतिक्रमण –** प्रतिक्रमण; **तदुभय –** वे दोनों यानी आलोचना और प्रतिक्रमण; **विवेक –** विवेक; **व्युत्सर्ग –** व्युत्सर्ग; **तपः –** तप; **छेद –** छेद; **परिहार –** परिहार; **उपस्थापनाः –** उपस्थापना।

Meaning of Words : **Ālocana** - confession; **Pratikramaṇa** - repentance; **Tadubhaya** - both confession & repentance; **Viveka** -

discrimination; **Vyutsarga** - giving up attachment to the body; **Tapaḥ** - penance; **Cheda** - suspension; **Parihāra** - expulsion; **Upasthāpanāḥ** - re-initiation.

सूत्रार्थ : आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय – आलोचना एवं प्रतिक्रमण, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना – ये अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप के प्रथम भेद रूप नौ प्रकार प्रायश्चित्त के हैं।

English Rendering : Confession, repentance, both confession & repentance combined, discrimination, giving up attachment to the body, penance, suspension, expulsion and re-initiation or restoration are nine kinds of first internal penance of expiation.

टीका : पूर्वोक्त सूत्रों में अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तपों का उल्लेख एवं उसके भेदों की सङ्ख्या बताई गई है। इस सूत्र में अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप के प्रथम भेद प्रायश्चित्त तप के प्रभेदों का वर्णन किया गया है।

प्रायश्चित्त का अर्थ चित्त को शुद्ध करना है। यहाँ इसके नौ भेदों का कथन है। गुरु के समक्ष बिना किसी विकल्प के अपने दोषों का निवेदन करना आलोचना है। 'मेरा दोष मिथ्या हो'– गुरु से ऐसा निवेदन कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना प्रतिक्रमण है। आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनों का संसर्ग होने पर दोषों का शोधन होने से तदुभय प्रायश्चित्त है। द्रव्य, क्षेत्र, अन्न, पान, उपकरण आदि के दोषों से शुद्ध हृदय से अलग रहना अथवा सन्तप्त हुए अन्न, पान और उपकरण आदि को विभाग/अलग करना विवेक प्रायश्चित्त है। अथवा भूल से त्याग की हुई वस्तु का ग्रहण हो जाए और स्मरण हो जाने पर उसका त्याग कर दिया जाए, उसको विवेक कहते हैं। कायोत्सर्ग आदि करना व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है। दिवस, पक्ष, माह आदि की प्रव्रज्या का छेद करना छेद प्रायश्चित्त है। पक्ष, माह आदि के विभाग से सङ्घ से दूर रखकर त्याग करना परिहार प्रायश्चित है। पुनः दीक्षित करना उपस्थापना प्रायश्चित्त है।

Comments : In the previous Sūtra, names of kinds of internal penance and their sub-divisions are stated. In this Sūtra, the sub-divisions of the first internal penance - expiation are being described.

Expiation means yielding purification to the consciousness. Here its nine sub-divisions are stated. Repentance is to narrate all the faults committed without any reservation to one's preceptor. 'My deed be condoned' to request the preceptor in this manner is penitential retreat (i.e. Pratikramaṇa). As the sin is corrected by such two fold expiation, the combination of both repentance and penitential retreat is known as two fold expiation. Separation of infirmities of substance, area, food, drinks impliments etc. for self -purification is expiation named 'Viveka' or taking or accepting, due to negligence the items which were given up and to give up these items on realising the mistake is 'Viveka' expiation. Standing in a place without any attachment for the body is known as 'Vyutsarga' expiation. Discounting the period of penance by a week, a fortnight etc. of a monk is suspension (Cheda) expiation. Expelling one from the order of the congragation for a fortnight, a month etc. is expulsion expiation. Reinitation consists of initiation into the order once again.

विनय तप के भेद

Kinds of Vinaya Penance

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः।।२३।।

(ज्ञान–दर्शन–चारित्र–उपचाराः।)

Jñānadarśanacāritropacārāḥ. (23)

शब्दार्थ : **ज्ञान** – ज्ञान; **दर्शन** – दर्शन; **चारित्र** – चारित्र; **उपचाराः** – उपचार।

Meaning of Words : **Jñāna** - (reverence to) knowledge; **Darśana** - (reverence to) faith; **Cāritra** - (reverence to) conduct; **Upacārāḥ** - (reverence to) custom of homage.

सूत्रार्थ : ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय और उपचार विनय – यह चार प्रकार का विनय रूप अभ्यन्तर तप है।

English Rendering : Reverence for knowledge, reverence for faith, reverence for conduct and reverence for custom of homage are four kinds of internal penance of Vinaya i.e. Reverence.

टीका : बहुत आदर के साथ मोक्ष प्राप्ति के लिये ज्ञान को ग्रहण करना, उसका अभ्यास करना और स्मरण करना आदि ज्ञान विनय है। शङ्का आदि दोषों से रहित तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना दर्शन विनय है। सम्यग्दृष्टि का चारित्र में चित्त लगाना चारित्र विनय है तथा आचार्य आदि के सम्मुख आने पर खड़े हो जाना, उनके परोक्ष में भी काय, वचन और मन से नमस्कार आदि करना उपचार विनय है तथा उनके परोक्ष में भी काय, वचन और मन से नमस्कार करना, उनके गुणों का कीर्तन करना और स्मरण करना आदि भी उपचार विनय है।

Comments : Acquiring knowledge, practising knowledge, recollecting knowledge and so on with great veneration and with the object of attaining salvation constitute reverence to knowledge. Belief in the nature of Realities without doubt etc. is reverence to faith. Absorption in conduct with knowledge and faith is reverence to conduct. Rising up, offering welcome and making obeisance in the presence of Ācārya etc. constitute reverential homage. Even with regard to the Great ones who are not present, making obeisance with the body, speech and mind, extolling their merits and recollecting them also constitute reverence to the custom of homage.

वैयावृत्त्य तप के भेद
Kinds of Vaiyāvṛttya Penance

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसङ्घसाधुमनोज्ञानाम्।।२४।।

(आचार्य-उपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष-ग्लान-गण-कुल-सङ्घ-साधु-मनोज्ञानाम्।)

Ācāryopādhyāyatapasviśaikṣaglānagaṇakula-saṅghasādhumanojñānām. (24)

शब्दार्थ : **आचार्य** – आचार्य; **उपाध्याय** – उपाध्याय; **तपस्वि** – तपस्वी; **शैक्ष** – शैक्ष; **ग्लान** – ग्लान; **गण** – गण; **कुल** – कुल; **सङ्घ** – सङ्घ; **साधु** – साधु; **मनोज्ञानाम्** – मनोज्ञ की।

Meaning of Words : **Ācārya** - Ācārya; **Upādhyāya** - Upādhyāya; **Tapasvi** - Tapasvī; **Śaikṣa** - Śaikṣa; **Glāna** - Glāna; **Gaṇa** - Gaṇa; **Kula** - Kula; **Saṅgha** - Saṅgha; **Sādhu** - Sādhu; **Manojñānam** - Manojña.

सूत्रार्थ : आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, सङ्घ, साधु और मनोज्ञ के भेद से वैयावृत्त्य रूप दस प्रकार का अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप है।

English Rendering : Ācārya, Upādhyāya, Tapasvī, Śaikṣa, Glāna, Gaṇa, Kula, Saṅgha, Sādhu and Manojña are ten kinds of ascetics and service to them results in ten kinds of Vaiyāvṛttya i.e. service to the ascetics.

टीका : गुणीजनों के ऊपर दुःख आने पर उसके निवारणार्थ जो सेवा-शुश्रूषा की जाती है, वह वैयावृत्त्य नाम का अन्तरङ्ग/अभ्यन्तर तप है।

जिसके निमित्त से शिष्य दीक्षा लेकर व्रतों का आचरण करते हैं, वे आचार्य कहलाते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये जिसके पास जाकर शास्त्र पढ़ते हैं, वे उपाध्याय कहलाते हैं। महोपवास आदि का अनुष्ठान करने वाला तपस्वी कहा जाता है। शिक्षाशील शैक्ष कहलाता है। रोग आदि से क्लान्त शरीर वाला ग्लान कहा जाता है। स्थविरों की सन्तति को गण कहते हैं। दीक्षाकाचार्य के शिष्य समुदाय को कुल कहा जाता है। चार वर्णों के श्रमणों के समुदाय को सङ्घ कहते हैं। चिरकाल से प्रव्रजित को साधु कहा जाता है। लोक-सम्मत को मनोज्ञ कहा जाता है।

Comments : The service rendered to the virtuous ones when they are subjected to sufferings is the internal penance known as 'Vaiyāvṛtti'.

'Ācārya' is the head from whom the vows are taken and practised. 'Upādhyāya' is the teacher under whom the scriptures are studied in order to attain liberation. 'Tapasvī' is the saint who practises long fasts etc. 'Śaikṣa' is the student disciple. 'Glāna' is the saint whose body is

afflicted on account of illness etc. 'Gaṇa' is a congregation of old ascetics. 'Kula' is the congregation of the disciples of the same Ācārya. 'Saṅgha' is the congregation of the four orders of ascetics. 'Sādhu' is a saint of long standing.'Manojña' is a saint of high reputation.

स्वाध्याय तप के भेद

Kinds of Svādhyāya Penance

वाचनाप्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।।२५।।

(वाचना-प्रच्छना-अनुप्रेक्षा-आम्नाय-धर्मोपदेशाः)

Vācanāpracchanānuprekṣāmnāyadharmopadeśāḥ. (25)

शब्दार्थ : **वाचना** – वाचना; **प्रच्छना** – प्रच्छना; **अनुप्रेक्षा** – अनुप्रेक्षा; **आम्नाय** – आम्नाय; **धर्मोपदेशाः** – धर्मोपदेश (है)।

Meaning of Words : **Vācanā** - teaching; **Pracchanā** - questioning (for clarification); **Anuprekṣā** - repeated reflection; **Āmnāya** - memorizing proper recitation; **Dharmopadeśāḥ** - delivering sermons or preachings.

सूत्रार्थ : वाचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश – यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय रूप आभ्यन्तर तप है।

English Rendering : Reading, questioning for clarity, repeated reflection, memorizing by proper recitation and delivering sermons or preachings are five kinds of Svādhyāya internal penance.

टीका : ग्रन्थ, अर्थ और दोनों का योग्य पात्र को प्रदान करना वाचना नाम का स्वाध्याय है। संशय को दूर करने या अपने विचारों को पुष्ट करने के लिये प्रश्न करना प्रच्छना स्वाध्याय है। जाने हुए अर्थ का मन में बार-बार अभ्यास करना अनुप्रेक्षा है। उच्चारण की शुद्धिपूर्वक पाठ को पुनः-पुनः दोहराना आम्नाय है। धर्मकथा आदि का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश स्वाध्याय है।

Comments : To teach or to present scripture or their meaning or both with precision to an appropriate person is Svādyaya. Putting questions to others with an object of clearing doubts or strengthening one's knowledge is questioning (Pracchanā). Recitation (Āmnāya) is repeating the text again and again with correct pronunciation. Preaching (Dharmopadeśa) is narrating moral stories etc.

व्युत्सर्ग तप के भेद

Kinds of Vyutsarga Penance

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः।।२६।।

(बाह्य–अभ्यन्तर–उपध्योः।)

Bāhyābhyantaropadhyoḥ. (26)

शब्दार्थ : **बाह्य –** बाह्य (उपधि); **अभ्यन्तर –** अभ्यन्तर (उपधि); **उपध्योः –** उपधियों का।

Meaning of Words : **Bāhya** - external (attachments); **Abhyantara** - internal (attachments); **Upadhyoḥ** - of attachments.

सूत्रार्थ : बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग – यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग रूप में आभ्यन्तर तप है।

English Rendering : To give up external & internal attachments are two kinds of internal Vyutsarga penance.

टीका : उपधि का अर्थ परिग्रह है जो बाह्य और अभ्यन्तर रूप दो प्रकार का होता है। व्युत्सर्जन करना व्युत्सर्ग है जिसका अर्थ त्याग है। वह दो प्रकार का है – बाह्य उपधि त्याग और अभ्यन्तर उपधि त्याग। आत्मा से जो पृथक् हैं, जैसे – मकान, धन, धान्य आदि बाह्य उपधि हैं और क्रोध आदि रूप आत्मा के भाव अभ्यन्तर उपधि है। नियत काल तक या जीवनपर्यन्त के लिये काय का त्याग करना भी अभ्यन्तर उपधि त्याग कहा जाता है। यह निःसङ्गता, निर्भयता और जीने की आशा के नाश करने के लिये किया जाता है।

Comments : 'Upadhi' means attachment which is of two kinds - external and internal. 'Vyutsarga' means giving up i.e. renunciation. It is of two kinds - giving up external objects of attachment and internal attachment. House, riches, grains etc. which do not become one with one's own-self are external attachments. Anger etc. passions which are the dispositions of the self are internal attachment. Renouncing attachment for the body for a particular period or for one's life-time is also considered as giving up of internal attachment. The object is to cultivate detachment, fearlessness and to dispel desire for living.

ध्यान के स्वामी, लक्षण एवं काल का कथन
Description of Owner, Characteristics & duration of meditation

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्त्तात्।।२७।।

(उत्तम-संहननस्य एकाग्र-चिन्ता-निरोधः ध्यानम् आ-अन्तः-मुहूर्त्तात्।)

Uttamasaṁhananasyaikāgracintānirodho
Dhyānamāntarmuhūrttāt. (27)

शब्दार्थ : **उत्तमसंहननस्य** – उत्तम संहनन (वाले) का; **एकाग्रचिन्तानिरोधः** – एक अर्थ में चित्त को लगाना; **ध्यानम्** – ध्यान (है); **आ–अन्तर्मुहूर्त्तात्** – अन्तर्मुहूर्त तक।

Meaning of Words : **Uttamasaṁhananasya** - of the best physical structure; **Ekāgracintānirodhaḥ** - concentration of thought on the meaning of one object only devoid of all other thoughts; **Dhyānam** - meditation; **Ā-Antarmūhurttāt** - up to one Antarmuhūrta.

सूत्रार्थ : उत्तम संहनन वाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक ही होता है।

English Rendering: Concentration of thought on one particular object is meditation which may continue up to one Antarmuhūrta by those who are bestowed with the best physical body structure.

टीका : आदि के तीन संहनन – वज्रर्षभनाराच, वज्रनाराच और नाराच – ये उत्तम संहनन कहलाते हैं। किन्तु इनमें से मोक्ष का साधन तो प्रथम ही है। जिसके इन तीनों में से कोई एक संहनन होता है, उस उत्तम संहनन वाले के द्वारा एक किसी विशेष विषय पर चित्त को रोककर अधिक से अधिक एक अन्तर्मुहूर्त तक ध्यान किया जा सकता है।

Comments : The first three body-structures - Vajrarṣabhanārāca, Vajranārāca and Nārāca - are the best structures. But salvation is possible only with the first body-structure. The one, having anyone of these three types of the best body-structures can meditate by fixing his thought on any particular object for a maximum duration of one Antarmuhūrta.

ध्यान के भेद

Kinds of Meditation

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि।।२८।।

(आर्त्त–रौद्र–धर्म्य–शुक्लानि।)

Ārttaraudradharmyaśuklāni. (28)

शब्दार्थ : **आर्त्त –** आर्त्त (ध्यान); **रौद्र –** रौद्र (ध्यान); **धर्म्य –** धर्म्य (ध्यान); **शुक्लानि –** शुक्ल (ध्यान हैं)।

Meaning of Words : **Ārtta** - painful (Concentration); **Raudra** - cruel (concentration); **Dharmya** - religious (concentration); **Śuklāni** - pure meditation.

सूत्रार्थ : आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल – ये ध्यान के चार भेद हैं।

English Rendering : Painful Concentration, Wicked Concentration, Religious Concentration and Pure Meditation are four kinds of Dhyāna i.e. meditation.

टीका : इस सूत्र में ध्यान के चार भेदों का कथन है। आगे के सूत्रों में इनके स्वरूप और भेदों का वर्णन किया जावेगा।

पीड़ा में जो ध्यान होता है, वह आर्त्त ध्यान है। रुद्र का अर्थ क्रूर आशय है। इसका कर्म या इसमें होनेवाला ध्यान रौद्र ध्यान है। जो धर्म से युक्त है, वह धर्म्य ध्यान है। जिसमें शुचि गुण का सम्बन्ध है, वह शुक्ल ध्यान है। इन चार प्रकार के ध्यानों में दो प्रशस्त और दो अप्रशस्त रूप ध्यान हैं। जो पापास्रव का कारण है, वह अप्रशस्त ध्यान है और जो कर्मों के निर्दहन करने में समर्थ है, वह प्रशस्त ध्यान है।

Comments : In this Sūtra, description is given of the four kinds of concentrations. In the following Sūtras, description is to be given of their nature and kinds.

Concentration on pain is 'Ārtta Dhyāna' or that which arises from concentration on pain. 'Rudra' means cruel temprament. The activity or concentration on cruel temprament is 'Raudra Dhyāna'. The meditation which is associated with religion is Dharma Dhyāna. That which is associated with purity is 'Śukla Dhyāna'. These four kinds of mediation are divided in to two types - auspicious and inauspicious. That which is the cause for influx of de-merit karmas is inauspicious and that which is capable for destroying karmas is auspicious.

प्रशस्त ध्यानों का फल

Result of auspicious meditations

परे मोक्षहेतू।।२९।।

(परे मोक्षहेतू।)

Pare Mokṣahetū. (29)

शब्दार्थ : **परे –** अन्त के (दो ध्यान); **मोक्षहेतू –** मोक्ष के हेतु (हैं)।

Meaning of Words : **Pare** - last (two meditations); **Mokṣahetū** - cause of salvation.

सूत्रार्थ : अन्त के दो ध्यान मोक्ष के कारण हैं।

English Rendering : The last two meditations are cause of salvation.

टीका : इस सूत्र में 'परे' द्विवचन में है, इसलिये यहाँ दो ध्यान के भेदों को मोक्ष का हेतु/कारण कहा है। वे अन्तिम दो ध्यान हैं – धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान। इसका यह भी तात्पर्य है कि प्रथमतः दो ध्यान – आर्त्त और रौद्र ध्यान संसार के कारण हैं।

Comments : The use of the word 'Pare' as plural is indicative of the last two kinds of meditations which are the causes of salvation. These two last meditation are Dharmadhyāna and Śukladhyāna. It also means that the first two - Ārttadhyāna and Raudradhyāna are causes of transmigration.

आर्त्तध्यान का प्रथम भेद – अनिष्ट संयोगज

Description of Painful Concentration - alliance of dis-agreeable objects

आर्त्तममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः।।३०।।

(आर्त्तम्–अमनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तत्–विप्रयोगाय स्मृति–समन्वाहारः।)

Ārttamamanojñasya Samprayoge Tadviprayogāya Smṛtisamanvāhāraḥ. (30)

शब्दार्थ : **आर्त्तम्** – आर्त्त (ध्यान); **अमनोज्ञस्य**– अमनोज्ञ का; **सम्प्रयोगे** – संयोग होने पर; **तद्विप्रयोगाय** – उसके वियोग के लिये; **स्मृतिसमन्वाहारः** – निरन्तर चिन्ता करना।

Meaning of Words : **Ārttam** - painful concentration; **Amanojñasya** - of disagreeable objects; **Samprayoge** - on their alliances; **Tadviprayogāya** - for their removal; **Smṛtisamanvāhāraḥ** - to remain worried all the time.

सूत्रार्थ : अप्रिय पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिये निरन्तर चिन्ता करना प्रथम आर्त्तध्यान है।

English Rendering : On the alliance with disagreeable object, to remain worried all the time for its removal is the first painful concentration known as Ārttadhyāna.

टीका : अनिष्ट यानी अप्रिय पदार्थों के संयोग हो जाने पर उन्हें दूर करने के लिये बार–बार विचार करना अनिष्ट संयोगज नाम का प्रथम आर्त्तध्यान है। अनिष्ट

पदार्थ चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के होते हैं। कुरूप, दुर्गन्धयुक्त शरीर सहित स्त्री आदि तथा भय उत्पन्न करने वाले शत्रु, सर्प आदि अमनोज्ञ चेतन पदार्थ हैं। और शस्त्र, विष, कण्टक आदि अमनोज्ञ अचेतन पदार्थ हैं।

Comments : Undesirable or disagreeable objects, when get associated, one remains continuously worried for their removal. Such repeated concentration for removal is first kind of painful concentration called 'Aniṣṭa Saṁyogaja Ārttadhyāna'. Undesirable objects can be both sentient and insentient ones. Ugly looking having offensive body smell woman etc. and enemies generating fear, snakes etc. are disagreeable sentient objects. Weapons, poison, prickly thorn etc. are disagreeable insentient objects.

इष्ट वियोगज आर्त्तध्यान

Painful Concentration - Separation of desirable objects

विपरीतं मनोज्ञस्य।।३१।।

(विपरीतं मनोज्ञस्य।)

Viparītaṁ Manojñasya. (31)

शब्दार्थ : **विपरीतम् –** (इसके) विपरीत; **मनोज्ञस्य–** मनोज्ञ (पदार्थों) का।

Meaning of Words : **Viparītam** - contrary (to that); **Manojñasya** - of agreeable (objects).

सूत्रार्थ : मनोज्ञ पदार्थ के वियोग हो जाने पर उसके संयोग के लिये बार-बार चिन्ता करना (इष्ट वियोगज) द्वितीय आर्त्तध्यान है।

English Rendering : On separation of agreeable objects, to remain worried all the time for their attainmant is the second painful concentration i.e. Iṣṭa Viyogaja.

टीका : स्त्री, पुत्र, धन-धान्य आदि इष्ट पदार्थों के वियोग हो जाने पर उनकी प्राप्ति के लिये बार-बार चिन्ता करना इष्ट संयोगज/इष्ट वियोगज नाम का दूसरा

आर्त्तध्यान है। पूर्व सूत्र से 'स्मृतिसमन्वाहार' पद की अनुवृत्ति होने से बार-बार चिन्ता करना अर्थ फलित होता है।

Comments : When agreeable objects such as wife, son or the wealth are lost, thinking again & again for regaining them is the second type of Ārttadhyāna (i.e. sorrowful concentration). From the previous Sūtra, the word 'Smṛutisamanvāhāra' is supplied here to mean repeated thinking for regaining.

पीड़ाचिन्तन आर्त्तध्यान

Painful Concentration - To remain worried for removal of pain

वेदनायाश्च।।३२।।

(वेदनायाः च।)

Vedanāyāśca. (32)

शब्दार्थ : **वेदनायाः** – वेदना के (होने पर); **च** – और।

Meaning of Words : **Vedanāyāḥ** - on feeling pain; **Ca** - and.

सूत्रार्थ : वेदना होने पर उसकी निवृत्ति के लिये बार-बार चिन्ता करना (पीड़ा-चिन्तन नाम का तीसरा) आर्त्तध्यान है।

English Rendering : For getting rid of pain, to remain worried for removal all the time is the third kind of painful concentration known as 'Pīḍācintana' painful concentration.

टीका : मानसिक, वाचनिक अथवा रोग आदि से होने वाली शारीरिक वेदना को दूर करने के लिये जो बार-बार चिन्ता होती है, वह तीसरा पीड़ाचिन्तन नाम का आर्त्तध्यान है। रोग के होने पर अधीर हो जाना, रोग बहुत कष्ट दे रहा है, रोग से कब मुक्ति मिलेगी, इस प्रकार सदा रोगजन्य दुःख का विचार करते रहना तीसरा आर्त्तध्यान है।

इस सूत्र में भी 'स्मृतिसमन्वाहार' पद की अनुवृत्ति होने से बार-बार चिन्तन करना अर्थ फलित होता है।

Comments : When there is pain caused by mental, verbal or physical disease etc., to think again and again for their removal is the third 'Pīḍācintana Ārttadhyāna'. On suffering from the disease, to become impatient as to when shall I be cured, the disease is causing lot of pain when shall I be cured; to remain continuously thinking about the disease is the third kind of sorrowful concentration.

In this Sūtra also, the word 'Smṛutisamanvāhāra' is implied meaning thereby repeated thinking.

निदान आर्त्तध्यान

Painful Concentration for future prosperity & Sensual enjoyment

निदानं च।।३३।।

(निदानं च।)

Nidānaṁ Ca. (33)

शब्दार्थ : **निदानम्** – निदान; **च** – एवं।

Meaning of Words : **Nidānam** - Nidāna; **Ca** - and.

सूत्रार्थ : निदान सञ्ज्ञक चौथा आर्त्तध्यान है।

English Rendering : To remain worried all the time for future sensual enjoyment & prosperity is the fourth kind of painful concentration known as 'Nidāna Ārttadhyāna.

टीका : 'मुझे भविष्य में इस वस्तु की प्राप्ति हो' ऐसा सङ्कल्प करना निदान कहलाता है। सूत्र में 'च' पद से सूत्र ३० में आये हुए 'स्मृतिसमन्वाहार' पद की अनुवृत्ति का प्रयोजन है। भविष्य में भोगों की प्राप्ति की आकाङ्क्षा में चित्त को बार-बार लगाना चौथा निदान नाम का आर्त्तध्यान है।

Comments : The desire to possess in future a particular type of pleasure - object is called 'Nidāna'. The word 'Ca' in the Sūtra refers to 'Smṛtisamanvāhāra' used in Sūtra 30. Thinking again & again for attaining pleasure-objects in future is the fourth kind of sorrowful concentration 'Nidāna'.

आर्त्तध्यान के स्वामी
Owners of Painful Concentrations

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।।३४।।

(तत्–अविरत–देशविरत–प्रमत्त–संयतानाम्।)

Tadaviratadeśaviratapramattasaṁyatānām. (34)

शब्दार्थ : **तत्** – वह (आर्त्तध्यान); **अविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्** – अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयतों के (होता है)।

Meaning of Words : **Tat** - that (painful concentration); **Aviratadeśaviratapramattasaṁyatānām** - (it manifests) to those who do not keep vows, have partial vows and have great vows with non-vigilance.

सूत्रार्थ : वह आर्त्तध्यान अविरत, देशव्रत और प्रमत्तसंयत जीवों को हो सकता है।

English Rendering : Painful concentration can manifest to those who do not keep vows, have partial vows and to the non-vigiliant ascetics.

टीका : व्रतों का पालन न करने वाले मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि तथा अविरत सम्यग्दृष्टि रूप प्रथम चार गुणस्थानों के जीव अविरत कहलाते हैं। पञ्चम गुणस्थानवर्ती देशविरत कहलाते हैं। पन्द्रह प्रकार के प्रमाद सहित छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि को प्रमत्तसंयत कहते हैं। प्रथम पाँच गुणस्थानवर्ती जीवों को चारों प्रकार का आर्त्तध्यान होता है, लेकिन आचार्य पूज्यपाद स्वामी की सर्वार्थसिद्धि टीका के अनुसार छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के निदान को छोड़कर तीन आर्त्तध्यान होते हैं। देशविरत के अणुव्रतों के साथ स्वल्प निदान रह सकता है। प्रमत्तसंयत के प्रमाद के उदय की अधिकता होने से तीन आर्त्तध्यान कभी–कभी हो सकते हैं।

Comments : 'Avirata' i.e. those Jīvas who do not undertake any vows being wrong believers Sāsādana right believers, right & wrong believers and vowless right believers, dwelling in first four stages of spiritual development are called 'Avirata'. Those who practise partial

vows are called 'Deśavirata', dwelling in the fifth stage of spiritual development. Pramattasaṁyata are monks in the sixth stage of spiritual development performing their duties but subject to fifteen kinds of faults. In the case of those dwelling up to fifth stage of spiritual development, all the four types of sorrowful concentration accur. According to the comments of 'Sarvārthasiddhi' scripture composed by Ācārya Pūjyapāda Svāmī, in case of non-vigilant monks, the first three sorrowful concentration except the last one i.e. 'Nidāna' occur. Those with partial vows may have minor desires for future pleasure objects. In case of non-vigilant monks, at times, three kinds of sorrowful concentration may occur due to rise of non-vigilance.

रौद्रध्यान के स्वामी और भेद
Owners & kinds of Wrathful Concentration

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः।।३५।।

(हिंसा–अनृत–स्तेय–विषयसंरक्षणेभ्यः रौद्रम् अविरत–देशविरतयोः।)

Hiṁsānṛutasteyaviṣayasaṁrakṣaṇebhyo Raudramaviratadeśaviratayoḥ. (35)

शब्दार्थ : **हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यः –** हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह का संरक्षण; **रौद्रम् –** रौद्र (ध्यान); **अविरतदेशविरतयोः –** अविरत और देशविरत (गुणस्थानों) में।

Meaning of Words : **Hiṁsānṛutasteyaviṣayasaṁrakṣaṇebhyah** - violence, untruth, stealing, safeguarding the possessions; **Raudram** - (cause of) wrathful concentration; **Aviratadeśaviratayoḥ** - those without vows and those having partial vows (may have).

सूत्रार्थ : हिंसा, झूठ, चोरी और परिग्रह संरक्षण के लिये सतत चिन्ता करना – ये रौद्रध्यान के चार प्रकार होते हैं। यह रौद्रध्यान अविरत और देशविरत गुणस्थानवर्ती जीवों को होता है।

English Rendering : To remain continuously worried for - violence, untruth, stealing and protection of possession are four kinds of

wrathful concentration. Such a wrathful concentration manifests to those who dwell in vowless & partial vows states of spiritual development.

टीका : क्रूर कर्मों के करने में निरन्तर चिन्तित रहना रौद्रध्यान है। रौद्रध्यान के हिंसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और परिग्रहानन्द भेद हैं। हिंसा आदिक क्रियाओं में आनन्द लेने के कारण हिंसानन्द नामक रौद्रध्यान होता है। दूसरों को धोखा देकर या मायाचारी कर आनन्द का अनुभव करना मृषानन्द नामक रौद्रध्यान है। चोरी करने में आनन्द का अनुभव करना चौर्यानन्द नामक रौद्रध्यान है। इन्द्रियों के विषय-भोगों में आनन्द मानना परिग्रहानन्द रौद्रध्यान है। रौद्रध्यान पहले गुणस्थान से पाँचवें गुणस्थान तक के जीवों को होता है। लेकिन देशविरत सञ्ज्ञक पञ्चम गुणस्थानवर्ती को यह नरक आदि दुर्गतियों का कारण नहीं है, क्योंकि सम्यग्दर्शन का ऐसी ही सामर्थ्य है।

Comments : To remain continuously deeply involved in thought about wrathful activities is termed as 'Raudradhyāna'. Its kinds are Hiṁsānanda (wrathful activities relating to injury), Mṛṣānanda (wrathful activities relating to untruth), Cauryānanda (wrathful activities relating to theft) and Parigrahānanda (wrathful activities relating to mundane possessions). To have enjoyment in violent or killing activities is Hiṁsānanda Raudradhyāna. To take pleasure in falsity or cheating others is Mṛṣānanda Raudradhyāna. To take pleasure in committing theft is Cauryānanda Raudradhyāna. To feel pleasure in mundane objects is Parigrahānanda Raudradhyāna. Such a wrathful concentration is found to exist in those who dwell from first stage to fifth stage of spiritual development. But it is not a cause for bondage of infernal life-course etc. to those who dwell in the fifth stage of spiritual development because of grandeur of the Right Faith.

धर्मध्यान के भेद

Kinds of Religious Concentration

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्।।३६।।

(आज्ञा-अपाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्।)

Ājñāpāyavipākasaṁsthānavicayāya Dharmyam. (36)

शब्दार्थ : **आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय –** आज्ञा (विचय), अपाय (विचय), विपाक (विचय) और संस्थान (विचय) के लिये; **धर्म्यम् –** धर्म (ध्यान) है।

Meaning of Words : **Ājñāpāyavipākasaṁsthānavicayāya** - (the contemplation of objects) of revelation, removal of misfortune or calamity, fruition of karmas and structure of universe; **Dharmyam** - (is) religious concentration.

सूत्रार्थ : आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान की विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्यध्यान है।

English Rendering : Contemplation on objects of revelations, removal of misfortune or calamity, fruition of karmas and the structure of universe is religious concentration.

टीका : पञ्च परमेष्ठी की भक्ति, शास्त्र का स्वाध्याय, तत्त्व चिन्तन, रत्नत्रय व संयम आदि में मन को लगाना धर्म्यध्यान है। धर्म्यध्यान के चार भेद हैं – आज्ञा-विचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। विचयन करना विचय है। विचय, विवेक और विचारणा सभी एकार्थक हैं। इसे प्रत्येक धर्म्यध्यान के साथ जोड़ना सार्थक भाव उत्पन्न करता है। केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित किये गये विषयों पर दृढ़ श्रद्धा होना आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है। सांसारिक दुःखों से छुटकारे के उपायों के बारे में निरन्तर चिन्तन करते रहना अपायविचय नाम का धर्म्यध्यान है। कर्मों के विपाक के कारण, संसार की विचित्रता के बारे में चिन्तन करने से विपाकविचय धर्म्यध्यान होता है। संसार की रचना के सम्बन्ध में चिन्तन करना कि यह जीव तीनों लोकों में भ्रमण कर कैसे-कैसे दुःख प्राप्त करता है, संस्थानविचय नाम का धर्म्यध्यान है। संस्थानविचय धर्म्यध्यान के चार भेदरूप हैं – पिण्डस्थ (शरीर-आकृति चिन्तवन), पदस्थ (मन्त्र-अक्षरों का चिन्तवन), रूपस्थ (पुरुषाकार आत्मा का चिन्तवन) और रूपातीत (शरीरगत आकार-प्रकार रहित मात्र ज्ञाता-दृष्टा भाव)। धर्म्यध्यान चतुर्थ गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होता है। कुछ आचार्यों के अनुसार धर्म्यध्यान सातवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। कुछ अन्य आचार्यों के मतानुसार धर्म्यध्यान चतुर्थ गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक होता है। तथा कुछ भिन्न आचार्यों के अनुसार संस्थान विचय धर्म्यध्यान केवल छठवें गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थानों में ही होता है, उससे नीचे के गुणस्थानों में नहीं। इसी प्रकार विपाकविचय धर्म्यध्यान पञ्चम गुणस्थान या उससे ऊपर के गुणस्थानों में ही होता है और यह परम्परा से मोक्ष का कारण भी है।

यहाँ भी 'स्मृतिसमन्वाहार' पद की अनुवृत्ति है और उसका प्रत्येक के साथ सम्बन्ध होता है।

Comments : To remain engrossed in devotion of Pañca Parameṣṭī, study of religious scriptures, reflection on the nature of realities, endowment of Ratnatraya and to be always remain stable in restraint etc. is termed as Dharmadhyāna. It is of four kinds - 'Ājñāvicaya', 'Apāyavicaya', 'Vipākavicaya' and 'Saṁsthānavicaya. To investigate or to contemplate is 'Vicaya'. Investigation, discrimination and deliberation are all synonyms. Prefixing the word 'Vicaya' with every kind of Dharma gives desired meaning and volition. To have firm belief in the scriptural preachings based on teachings of the omniscient is 'Ājñāvicaya' Dharmadhyāna. To have continous reflection on the means of getting rid of mundane sufferings is 'Apāyavicaya' Dharmadhyāna. To reflect on the worldly causes of mundane peculiarities due to fruition of karmas is 'Vipākavicaya' Dharmadhyāna. To have reflection on the structural constitution of the universe and to ponder over on untold sufferings the mundane beings undergo due to transmigration is 'Saṁsthānavicaya' Dharmadhyāna. This is again of four kinds - Piṅḍastha (i.e. reflection on the self soul nature), Padastha (reflection based on mystic verses), Rūpastha (reflection on the nature of soul in the shape & size of human body) and Rūpātīta (reflection as a soul is only knower and seer). Dharmadhyāna is found to exist from fourth stage to seventh stage of spiritual development. Some 'Ācāryas are of the view that it exists only from seventh to tenth stage of spiritual development. Some other Acharyas are of the view that it exists from fourth to tenth stage of spiritual development. And according to some other Ācāryas, 'Saṁsthānavicaya' Dharmadhyāna is found only in those who dwell in higher stages over sixth stage of spiritual development and not in lower stages. Similarly 'Vipākavicaya' Dharmadhyāna manifests in fifth and higher stages of spiritual development and is also a cause for eventual attainment of salvation.

Here also the term 'Smṛutisamanvāhāra' is supplied and is added to every kind of Dharmadhyāna.

प्रथम दो शुक्लध्यानों के स्वामी

Owners of the first two pure meditations

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।।३७।।

(शुक्ले च–आद्ये पूर्व–विदः।)

Śukle Cādye Pūrvavidaḥ. (37)

शब्दार्थ : **शुक्ले च – आद्ये –** (धर्म्यध्यान) और आदि के दो शुक्ल (ध्यान); **पूर्वविदः –** पूर्वविद् के (होते हैं)।

Meaning of Words : **Śukle Ca - Ādye -** (religious concentration) and first two pure meditations manifest to the saint well versed in Pūrvas (i.e. Pūrvavida); **Pūrvavida** - well versed in Pūrvas.

सूत्रार्थ : धर्म्यध्यान और आदि के दो शुक्लध्यान पूर्वविद् (पूर्व के ज्ञाता) के होते हैं।

English Rendering : The religious concentration and first two pure meditations manifest to a saint who is well versed in Pūrvas.

टीका : शुक्लध्यान के चार भेदों का वर्णन आगे के सूत्रों में किया जावेगा। पहले के दो शुक्लध्यान – पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क पूर्वज्ञानधारी के होते हैं, ऐसा इस सूत्र में बताया गया है। सूत्र में 'च' शब्द से धर्म्यध्यान का भी समुच्चय होता है। धर्म्यध्यान श्रेणि आरोहण के पहले होता है। श्रेणि आरोहण के समय शुक्लध्यान होता है।

सूत्र में 'पूर्वविदः' शब्द के लिये टीकाकारों ने श्रुतकेवली का होना बताया है। आगम के अनुसार श्रुतकेवली १४ पूर्वों के ज्ञाता होते हैं। वे द्वादशाङ्ग रूप समस्त श्रुत ज्ञान को धारण करने वाले महर्षि होते हैं। और द्रव्यश्रुत और भावश्रुत दोनों से सम्पन्न होते हैं। लेकिन श्रेणि आरोहण के लिये १४ पूर्वों का ही ज्ञाता होना आवश्यक नहीं है। आगम में ऐसे कई उदाहरण हैं जिनमें ९, १० या १४ पूर्वों के ज्ञाता श्रेणि आरोहण कर मुक्त हुए हैं। इसलिये पूर्वविद् के लिये पूर्वज्ञानधारी अर्थ ही ज्यादा उपयुक्त है और यही सूत्र से ध्वनित होता है। इसी अध्याय के अन्तिम सूत्र ४७ की व्याख्या में भी

स्नातक होकर मुक्त होने के लिये १४ पूर्वों का ज्ञानधारी होना आवश्यक नहीं कहा गया है।

सूत्र में पूर्वविद् कथन मुख्य मार्ग का कथन है। गौण मार्ग से तो पाँच समितियों और तीन गुप्तियों आदि के प्रतिपादन करने वाले सारभूत श्रुतज्ञान से भी शुक्लध्यान और केवलज्ञान होना पाया जाता है।

उपशमक और क्षपक दोनों प्रकार से श्रेणि का आरोहण होता है। पहला शुक्ल-ध्यान – पृथक्त्ववितर्कवीचार उपशमकश्रेणि की विवक्षा में आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान में और क्षपकश्रेणि की विवक्षा में आठवें से दसवें गुणस्थान में होता है। दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्कावीचार – बारहवें गुणस्थान में होता है। कुछ आचार्यों की मान्यतानुसार पहला और दूसरा शुक्लध्यान ग्यारहवें गुणस्थान में भी होता है।

Comments : Description of the four kinds of 'Śukladhyāna' i.e. pure meditation is being given in the following Sūtras. In this Sūtra, it is stated that the first two pure meditations - 'Pṛthaktvavitarka' and 'Ekatvavitarka' are performed by the saint well-versed in the knowledge of 'Pūrvas'. The use of the word 'Ca' in the Sūtra connects to the Dharmadhyāna also. Dharmadhyāna occurs prior to the ascending of ladder of spiritual development. During ascending of the ladder, pure meditation is performed.

'Pūrvavidaḥ' term occuring in the Sūtra is meant for scriptural omniscients as per commentators. As per Āgama, Scriptural omniscients are knowers of fourteen Pūrva. They are endowed with entire scriptural knowledge in the form of Dvādaśāṅga. They are equipped with both kinds of Dravyaśruta (i.e. material scriptural knowledge) and Bhāvaśruta (i.e. acquisition of scriptural knowledge by listening). But for ascending the ladder of spiritual development, it is not necessary to be well-versed in the knowledge of fourteen Pūrvas. There are many examples in the ancient scriptures (Āgama) when only knowers of ten, eleven or twelve Pūrvas have ascended the ladder and attained salvation. Therefore, it is appropriate that the meaning of 'Pūrvavid' is accepted as knowers of Pūrvas and that is what appears to be the message of this Sūtra. In the last Sūtra 47 of this chapter also, it is stated that saints after attaining

status as 'Snātaka' get salvation and for that no precondition exists that they should be knowers of fourteen Pūrvas.

The prescription of 'Pūrvavid' in the Sūtra is in respect of the primary path. From consideration of secondary path, even those who have minimum scriptural knowledge required for practice of five carefulness (Samitis) and three controls (Guptis) are found to perform meditation and attain omniscience.

Ascending the ladder of spiritual development is both by subsidence of karmas and destruction of karmas. The first pure meditation 'Pṛthaktvavitarkavīcāra' by those who ascend subsidence ladder occurs from eighth to eleventh stage and by those who ascend the destructive ladder from eight to tenth stage of spiritual development. The second pure meditation - 'Ekatvavitarkāvīcāra is performed in the twelfth stage of spiritual development. Some Ācāryas are of the view that the first & second pure meditations are performed in the eleventh stage of spiritual development also.

अन्तिम दो शुक्लध्यानों के स्वामी
Owners of the last two pure meditations

परे केवलिनः ।।३८।।

(परे केवलिनः।)

Pare Kevalinaḥ. (38)

शब्दार्थ : **परे –** उत्तरवर्ती दो (यानी अन्तिम दो शुक्लध्यान); **केवलिनः –** केवली के (होते हैं)।

Meaning of Words : **Pare** - last two (pure meditations); **Kevalinaḥ** - of omniscient.

सूत्रार्थ : उत्तरवर्ती दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं।

English Rendering : The next two i.e. the last two pure mediations manifest to the omniscient.

टीका : चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय) का क्षय होने से जिन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया है, वे केवली कहलाते हैं। इन्हें अर्हन्त या अरिहन्त भी कहते हैं। केवली भगवान् जब तेरहवें गुणस्थान में होते हैं, योग सहित होने से विहार, उपदेश, क्रियायें आदि करते हैं, तब वे सयोगकेवली कहलाते हैं। आयु के अन्तिम क्षणों में जब अन्तर्मुहूर्त काल अवशिष्ट रहता है, तब इन क्रियाओं का त्याग कर वे योगनिरोध करते हैं। वे उस समय अयोगकेवली कहलाते हैं।

उत्तरवर्ती यानी अन्तिम दो शुक्लध्यान - सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये क्रमशः सयोगकेवली और अयोगकेवली के द्वारा किये जाते हैं।

Comments : Those who have destroyed all the four destructive karmas (i.e. knowledge obscuring, perception obscuring, deluding and obstructive karmas) are known as Kevalī (omniscient). They are also called 'Arhanta' or 'Arihanta'. When an omniscient is in the thirteenth stage of spiritual development, he is possessed with Yoga and therefore, undertakes travel, preaching etc. and is known as Sayogakevalī or embodied omniscient. At the end of his life span, when only one Antarmuhūrta of his life-span remains, he gives up all activities of body & mind and is known as 'Ayogakevalī' i.e. vibrational' omniscient.

The last two pure meditations i.e. Sūkṣmakriyā-Apratipāti and Vyuparatakriyānivarti are performed by Sayogakevalī and Ayogakevalī respectively.

शुक्लध्यानों के नाम

Names of pure meditations

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रिया-निवर्तीनि।।३९।।

(पृथक्त्व-एकत्व-वितर्क-सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत-क्रिया-निवर्तीनि।)

Pṛuthaktvaikatvavitarkasūkṣmakriyāpratipāti-vyuparatakriyānivartīni. (39)

शब्दार्थ : **पृथक्त्व –** पृथक्त्व (वितर्क); **एकत्ववितर्क –** एकत्व वितर्क; **सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति –** सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति; **व्युपरतक्रियानिवर्तीनि –** व्युपरतक्रियानिवर्ति।

Meaning of Words : **Pṛthaktva** - Pṛuthaktva (Vitarka) i.e. absorption in meditation of self but unconsciously allowing its different attributes to replace on another; **Ekatvavitarka** - absorption in meditation in one aspect of the self without changing the particular aspect concentrated upon; **Sūkṣmakriyāpratipāti** - the very fine vibratory movements in the soul even when it is deeply absorbed in itself; **Vyuparatakriyānivartīni** - total absorption of the soul in itself, steady and undisturbably fixed without any motion or vibration what so ever.

सूत्रार्थ : पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया निवर्ति – ये चार शुक्लध्यान हैं।

English Rendering : Pṛthaktvavitarka, Ekatvavitarka, Sūkṣmakriyāpratipāti and Vyuparatakriyānivarti are four pure meditation.

टीका : इस सूत्र में चारों शुक्लध्यानों के नामों का उल्लेख है। आगे के सूत्रों में इनके लक्षणों का वर्णन किया जाएगा। सूत्र में पृथक्त्व–एकत्व–वितर्क पद दिया है। इससे 'वितर्क' पद को अन्तदीपक मानकर प्रथम दो शुक्ल ध्यानों के साथ जोड़ा जाता है, तब उनकी क्रमशः पृथक्त्ववितर्क एवं एकत्ववितर्क सञ्ज्ञा होती है।

Comments : In this Sūtra, names of all four pure meditations are given. Their characteristics are to be described in the following Sūtras. The term 'Pṛthaktva-Ekatva-Vitarka' is given in the Sūtra. The term 'Vitarka' is common for first two pure meditations and these are termed as 'Pṛthaktvavitarka' and 'Ekatvavitarka'.

चारों शुक्लध्यानों के आलम्बन

Substratum of the four pure meditations

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्॥४०॥

(त्रि-एकयोग-काययोग-अयोगानाम्।)

Tryekayogakāyayogāyogānām. (40)

शब्दार्थ : **त्र्येकयोग –** तीन और एक योग; **काययोगायोगानाम् –** काय-योग और अयोगों के (ये चार शुक्लध्यान क्रमशः होते हैं)।

Meaning of Words : **Tryekayoga** - Three and one Yoga; **Kāyayogāyogānām** - Kāyayoga and without Yoga (these four pure meditations manifest respectively).

सूत्रार्थ : प्रथम शुक्लध्यान तीनों योगवालों, दूसरा शुक्लध्यान एक योगवाले, तीसरा शुक्लध्यान काययोगवाले और चौथा शुक्लध्यान अयोगी को होता है।

English Rendering : First pure meditation is performed by those who possess all the three Yogas i.e. activities of body, speech and mind; the second meditation is performed by anyone of the three Yogas; the third pure meditation is performed by only body activity and the fourth pure meditation by without any Yoga.

टीका : यहाँ शुक्लध्यान के चारों भेदों के स्वामियों का वर्णन किया जा रहा है। तीनों योगवालों को पृथक्त्ववितर्क शुक्लध्यान होता है। तीन योगों में से किसी भी एक योग में स्थिर होने पर एकत्ववितर्क शुक्लध्यान होता है। काययोगवाले के सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान होता है और अयोगी के व्युपरतक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान होता है।

Comments : Here mention is being made of those ascetics who perform the four pure meditations. Those who possess all the three kinds of Yoga perform Pṛthaktvavitarka pure meditation. Those who are steady in only one of the three Yogas perform Ekatvavitarka pure

meditation. Embodied omniscients perform Śūkṣmakriyā-Apratipāti pure meditation and omniscient with no karmic virbrations perform Vyuparatakriyānivarti pure meditation.

पहले दो शुक्लध्यानों की विशेषता

Speciality of the first two pure meditations

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे।।४१।।

(एक-आश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे।)

Ekāśraye Savitarkavīcāre Pūrve. (41)

शब्दार्थ : **एकाश्रये –** एक आश्रयवाले; **सवितर्कवीचारे –** वितर्क सहित और वीचार सहित; **पूर्वे –** पूर्व के दो (शुक्लध्यान)।

Meaning of Words : **Ekāśraye** - of having one base or support; **Savitarkavīcāre** - with scriptural knowledge and with shifting; **Pūrve** - first two (meditations).

सूत्रार्थ : पहले के दो शुक्लध्यान एक के आश्रय से होते हैं और वितर्क एवं वीचार सहित होते हैं।

English Rendering : The first two pure meditations are performed by adhering to one base or support and manifest with scriptural knowledge and shifting there of.

टीका : पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्क-अविचार रूप जिन दो ध्यानों का एक आश्रय होता है, वे एक आश्रयवाले कहलाते हैं। जिसने सम्पूर्ण श्रुतज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसके द्वारा ही ये दोनों शुक्लध्यान प्रारम्भ किये जाते हैं। जो वितर्क (श्रुतज्ञान) और वीचार (जो एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक वचन से दूसरे वचन में और मन-वचन-काय इन तीनों योगों में से एक योग से दूसरे योग में परिणमन होता है, उसको वीचार कहते हैं) सहित होता है।

Comments : The first two pure meditations - Pṛthaktvavitarka-vīcāra and Ekatvavitarkavīcāra are based on one single support and therefore they are called 'Ekāśraya'. These pure meditations can be performed only by those who have acquired all the scriptual knowledge which is of Vitarka i.e. scriptural knowledge and Vīcāra i.e. that which is shifting from one substance to the other, from one consonant to the other and from one Yoga to any of the three Yogas i.e. mind, speech and body is known as Vīcāra.

दूसरे शुक्लध्यान की विशेषता

Speciality of second pure meditations

अवीचारं द्वितीयम्।।४२।।

(अवीचारं द्वितीयम्।)

Avīcāraṁ Dvitīyam. (42)

शब्दार्थ : **अवीचारम्** – वीचार से रहित; **द्वितीयम्** – दूसरा (शुक्लध्यान)।

Meaning of Words : **Avīcāram** - without shifting; **Dvitīyam** - second (pure meditations).

सूत्रार्थ : द्वितीय शुक्लध्यान वीचार रहित है।

English Rendering : The second pure meditation is free from shifting (activities).

टीका : द्वितीय शुक्लध्यान – एकत्ववितर्क–अविचार में वितर्क तो है, लेकिन वह वीचार से रहित है।

Comments : In the second pure meditation, i.e. Ekatvavitarka-Avīcāra, there is Vitarka i.e. scriptural knowledge but is without Vīcāra i.e. shifting of consonant, intent or Yoga.

वितर्क का लक्षण

Characteristics of Vitarka

वितर्कः श्रुतम्।।४३।।

(वितर्कः श्रुतम्।)

Vitarkaḥ Śrutam. (43)

शब्दार्थ : **वितर्कः** – वितर्क; **श्रुतम्** – श्रुतज्ञान।

Meaning of Words : **Vitarkaḥ** - Vitarka; **Srutam** - scriptural knowledge.

सूत्रार्थ : वितर्क श्रुतज्ञान को कहते हैं।

English Rendering : Vitarka means Ścriptural knowledge.

टीका : विशेष रूप से तर्कणा अर्थात् ऊहा करना वितर्क यानी श्रुतज्ञान कहलाता है।

Comments : Investigative argument into scriptural subjects is known as Vitarka or scriptural knowledge.

वीचार का अर्थ

Meaning of Vīcāra

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसङ्क्रान्तिः।।४४।।

(वीचारः अर्थ-व्यञ्जन-योग-सङ्क्रान्तिः।)

Vīcāro(a)rthavyañjanayogasaṅkrāntiḥ. (44)

शब्दार्थ : **वीचारः** – वीचार; **अर्थव्यञ्जनयोग** – अर्थ, व्यञ्जन और योग का; **सङ्क्रान्तिः** – परिवर्तन (होता है)।

Meaning of Words : **Vīcāraḥ** - Vīcāra; **Arthavyañjanayoga** - object of meditation, consonant and Yoga; **Saṅkrāntiḥ** - shifting or changing.

सूत्रार्थ : अर्थ, व्यञ्जन और योग की सङ्क्रान्ति को वीचार कहते हैं।

English Rendering : Vīcāra is shifting of objects, consonant and Yoga.

टीका : एक अर्थ से दूसरे अर्थ में, एक वचन से दूसरे वचन में और मन, वचन, काय रूप तीन योगों में से किसी एक योग से दूसरे योग में परिणमन को 'वीचार' कहते हैं। अर्थ ध्येय को कहते हैं। इससे द्रव्य और पर्याय दोनों ही लिये जाते हैं। व्यञ्जन का अर्थ वचन है तथा काय-वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। सङ्क्रान्ति का अर्थ परिवर्तन है। द्रव्य को छोड़कर पर्याय को प्राप्त होता है या पर्याय को छोड़कर द्रव्य को प्राप्त होना अर्थ सङ्क्रान्ति है। एक श्रुत वचन का आलम्बन लेकर उससे दूसरे वचन का आलम्बन लेना व्यञ्जन सङ्क्रान्ति है। काययोग को छोड़कर वचन या मन रूप किसी दूसरे योग को स्वीकार करना और दूसरे योग को छोड़कर काययोग को स्वीकार करना योग सङ्क्रान्ति है। इस प्रकार के परिवर्तन को 'वीचार' कहते हैं।

प्रथम शुक्लध्यान को पृथक्त्ववितर्कवीचार कहते हैं। यह ध्यान उपशमक श्रेणि की विवक्षा में आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक और क्षपक श्रेणि की विवक्षा में आठवें से दसवें गुणस्थान तक होता है। एकत्ववितर्क-अवीचार नामक दूसरा शुक्लध्यान क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में होता है। इस दूसरे शुक्लध्यान से ही केवलज्ञान उत्पन्न होता है। कुछ आचार्यों के मतानुसार दूसरा शुक्लध्यान ग्यारहवें गुणस्थान में भी होता है।

कुछ आचार्यों के अनुसार दोनों प्रकार की श्रेणियों में धर्म्यध्यान दसवें गुणस्थान तक होता है और उसके बाद प्रथम शुक्लध्यान ग्यारहवें गुणस्थान में होना माना है। कुछ आचार्य द्वितीय शुक्लध्यान को भी ग्यारहवें गुणस्थान में मानते हैं, क्योंकि तृतीय शुक्लध्यान अप्रतिपाति है। अतः उसके पूर्व के ध्यान प्रतिपाति हैं। इसलिए उनकी मान्यतानुसार प्रथम दो शुक्लध्यान ग्यारहवें गुणस्थान में भी हो सकते हैं।

तीसरा शुक्लध्यान - सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति - तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में केवली भगवान् करते हैं। वितर्क रहित अवीचार सूक्ष्मक्रिया करने वाली

आत्मा के होता है। क्रिया का अर्थ योग है, वह जिसके पतनशील हो, वो प्रतिपाति कहलाता है। जिसमें क्रिया अर्थात् योग सूक्ष्म होता है, वह सूक्ष्मक्रिया है और सूक्ष्मक्रिया होकर जो अप्रतिपाति होता है, वह सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति है। जब सयोगकेवली की आयु अन्तर्मुहूर्त शेष रहती है, तब केवली-समुद्घात के द्वारा चारों अघातिया कर्मों की स्थिति को समान करके अपने पूर्व शरीर प्रमाण होकर सूक्ष्म काययोग के द्वारा सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान को करते हैं।

अन्तिम चौथा शुक्लध्यान वितर्क रहित है, वीचार रहित है, अनिवर्ति है, क्रिया रहित है, शैलेशी अवस्था को प्राप्त है। इसमें प्राणापान क्रिया का तथा सब प्रकार के काययोग, वचनयोग और मनोयोग के द्वारा होने वाले आत्मप्रदेश परिस्पन्दन रूप क्रिया का उच्छेद हो जाने से व्युपरतक्रियानिवर्ति शुक्लध्यान या समुच्छिन्नक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यान भी कहते हैं।

Comments : Shifting from one object to another, from one word to the other and from activities of mind, speech and body to any one of these is called 'Vīcāra'. 'Artha' means object and 'Vyañjana' means word; activity of mind, speech and body is 'Yoga'. 'Saṅkrānti' means shifting. That which adopts a mode from a substance or adopts a substance from a mode is known as shifting of object i.e. 'Artha Saṅkrānti'. Shifting support of one kind of scriptural word to another is known as 'Vyañjana Saṅkrānti'. Shifting from body activity to either speech or mind activity or from these activities to shift to body activity is 'Yoga Saṅkrānti'. Such shifting is termed as 'Vīcāra'.

The first pure meditation is named as 'Pṛthaktvavitarkavīcāra'. This meditation is performed from eighth to eleventh stage of spiritual development by those saints who ascend the subsidence ladder and from eighth to tenth stage of spiritual development by those who ascend destructive ladder. The second pure meditation 'Ekatvavitarkavīcāra' is performed in the twelfth stage of spiritual development known as 'Kṣīṇakaṣāya'. The omniscience mainfests on performance of this second pure meditation. Some Ācāryas are of the view that the second pure meditation is also performed in the eleventh stage of spiritual development.

Some Ācāryas are of the opinion that in case of both systems of ascending the ladder of spiritual development, there is religious concentration (Dharmadhyāna) up to tenth stage and thereafter the first pure meditation is performed in the eleventh stage of spiritual development. Some Ācāryas believe that the second pure meditation is performed in eleventh stage also as pure meditations prior to the third one are reversible. As such, according to them, both first & second pure meditations are performed in the eleventh stage of spiritual development.

The third pure meditation - 'Sūkṣmakriyā Apratipāti' is performed by the omniscient in the last Antarmuhūrta of the thirteenth stage of spiritual development. Meditation without any thought or intent is performed by the soul endowed with subtle activities. Activity means 'Yoga'. When it could be reversed back, it is known as 'Pratipāti'. When the activity or Yoga is subtle, it is known as 'Sūkṣmakriyā' or subtle activity. And when the subtle activity is accompanied with ir-reversible process it is known as 'Sūkṣmakriyā Apratipāti'. When the life-span of the omniscient remains only one Antarmuhūrta, to equalise the duration of remaining four Aghātiyā karmas, the omniscient performs the process of Samudghāta and thereafter performs the third pure meditation making his body shape as was prior to Samudghāta.

The last pure meditation is without any thought or intent, without any feelings of the nature of own soul, without any of the mental, verbal or physical activity and is in a motionless state. In this meditation, due to absence of any respiration, and vibration of any space-points of the soul, it is termed as 'Vyuparatakriyā' or 'Samucchinnakriyānivṛtti' pure meditation.

निर्जरा के स्थान
Stage of dissociation of Karmas

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसङ्ख्येयगुणनिर्जराः ।।४५।।

(सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरत-अनन्तवियोजक-दर्शनमोहक्षपक-उपशमक-उपशान्तमोह-क्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशः असङ्ख्येय-गुणनिर्जराः।)

Samyagdṛṣṭiśrāvakaviratānantaviyojakadarśanamoha-kṣapakopaśamakopaśāntamohakṣapakakṣīṇamohajināḥ Kramaśo(a)saṅkhyeyaguṇanirjarāḥ. (45)

शब्दार्थ : **सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशम–कोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः** – सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजक, दर्शन मोह का क्षपक, चारित्र मोह का उपशमक, उपशान्त मोहक, चारित्र मोह का क्षपक, क्षीण मोहक और जिन; **क्रमशः** – क्रम से; **असङ्ख्येयगुणनिर्जराः** – असङ्ख्यातगुणीनिर्जरावाले।

Meaning of Words : **Samyagdṛṣṭiśrāvakaviratānantaviyojakadarśanamohakṣapakopaśamakopaśāntamohakṣapakakṣīṇamohajināḥ Kramaśo(a)saṅkhyeyaguṇanirjarāḥ** - Right Believer, house-holder with partial vows, the ascetic with Great Vows, the divertor of the Anantanubandhī kinds of passions, the destroyer of the faith deluding karma, the suppressor of the conduct deluding karma, the ascetic with mitigated passions, the destroyer of conduct deluding karma, the ascetic with destroyed delusion and the omniscient; **Kramaśaḥ** - in that order; **Asaṅkhyeyaguṇanirjarāḥ** - in-numerable times dissociation of karmas.

सूत्रार्थ : सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजक, दर्शन मोह का क्षपक, चारित्र मोह का उपशमक, उपशान्तमोहक, चारित्र मोह का क्षपक, क्षीणमोह और जिन – ये (दस) क्रमशः असङ्ख्यातगुणी – असङ्ख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा करनेवाले होते हैं।

English Rendering : The dissociation of karmas goes on increasing innumerable times more from stage to stage in the (ten) stages of the right believer, the house-holder with partial vows, the ascetic with Great Vows, the divertor of the Anantānubandhī passions, the destroyer of the faith deluding karma, the suppressor of conduct deluding karma, the ascetic with mitigated passions the destroyer of the conduct deluding karma, the ascetic with destroyed delusion and the omniscient.

टीका : कोई भव्य जीव बहुत काल तक एकेन्द्रिय और विकलत्रय पर्यायों में जन्म लेने के बाद सञ्ज्ञी पर्याप्तक, पञ्चेन्द्रिय होकर काललब्धि आदि की सहायता

से अपूर्वकरण आदि विशुद्ध परिणामों को प्राप्त कर पहले की अपेक्षा अधिक कर्मों की निर्जरा करता है। वही जीव प्रथम सम्यग्दर्शन को प्राप्ति के समय पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव अप्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम करके श्रावक होकर विशुद्धि की प्रकर्षता के कारण पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम करके विरत होकर विशुद्धिवश पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी चार कषायों का विसंयोजन (अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी चार कषायों को अप्रत्याख्यानावरण आदि कषायों में परिणत करना) करके प्रकर्ष विशुद्धि के द्वारा पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का क्षय करता हुआ दर्शनमोह क्षपक जीव परिणामों की विशुद्धि को प्राप्त कर पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रेणि चढ़ने के अभिमुख होता हुआ चारित्र मोह का उपशम करता हुआ विशुद्धि द्वारा पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव सम्पूर्ण चारित्र मोहनीय के पूर्णतः उपशम करने के निमित्त से उपशान्त कषाय होकर विशुद्धि के द्वारा पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव समस्त चारित्र मोहनीय के क्षय करने में तत्पर होकर क्षपक नाम को प्राप्त कर प्रकर्ष विशुद्धि के कारण पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। वही जीव सम्पूर्ण चारित्र मोहनीय कर्म को क्षय करने वाले परिणामों को प्राप्त कर क्षीणमोह या क्षीणकषाय होकर पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है। और वही जीव द्वितीय शुक्लध्यान की अग्नि से घातिया कर्मों को नाश करके जिन सञ्ज्ञा को प्राप्त कर पहले से असङ्ख्यातगुणी कर्म निर्जरा करता है।

यहाँ मुख्य रूप से गुणश्रेणि निर्जरा के दस स्थानों का निर्देश किया गया है। असङ्ख्यात गुणित क्रम श्रेणिरूप से कर्मों की निर्जरा होना गुणश्रेणि निर्जरा है।

Comments : Any soul capable of attaining emancipation takes birth as a five sense organs having the faculty of mind and completes development after passing through life-courses of one-sense being and two to four sense-being for a very long period, if attains purity of thought i.e. Apūrvakaraṇa etc. assisted by other factors such as favourable

time etc. dissociates much more karmas in comparision of the previous times. The same soul, at the time of attaining first right faith dissociates in-numerable times more karmas as compared to the earlier time. The same soul, after attaining destruction-cum-subsidence of Apratyākhyānāvaraṇa passions with intense purity of thoughts, dissociates innumerable times more karmas as compared with the previous state. The same soul as a result of rise of destruction-cum-subsidence of Pratyākhyānāvaraṇa passions, free from mundane attachment (Vrata) dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous state. The same soul after transforming the Anantānubandhī passions into Apratyākhyānāvaraṇa etc. dissociates in-numerable times karmas as compared to the previous state as a result of greater purity. The same soul after destroying the three sub-types of faith deluding karma with greater purity of thought dissociates in-numerable times more karmas as compard to the previous state. The same soul after attaing destructive right faith, when on the threshold of ascending the subsidential ladder of spiritual development with subsidence of conduct deluding karma and with greater purity dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous state. The same soul after total subsidence of conduct deluding karma and attaining the stage of 'Upaśānta' passions on the strength of greater purity dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous stage. The same soul when ready to destroy completely the conduct deluding karma and becoming a destroyer owing to greater purity dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous stage. The same soul on complete destruction of conduct deluding karma and attaining the stage of 'Kṣīṇamoha' of spiritual development owing to greater purity dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous state. The soul after performing the second pure meditation and attaining omniscience after destroying destructive karmas and becoming a Jina dissociates in-numerable times more karmas as compared to the previous state.

Here mainly ten stages for in-numerable times dissociation of karmas are described. The term 'Guṇaśreṇī Nirjarā'. stands for innumerable times more dissociation of karmas than the previous state.

निर्ग्रन्थों के नाम

Names of Nirgranthas

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ।।४६।।

(पुलाक-बकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकाः निर्ग्रन्थाः)

Pulākabakuśakuśīlanirgranthasnātakaḥ Nirgranthaḥ. (46)

शब्दार्थ : **पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकाः** – पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक; **निर्ग्रन्थाः** – (ये पाँच) निर्ग्रन्थ (हैं)।

Meaning of Words : **Pulākabakuśakuśīlanirgranthasnātakaḥ - Pulāka** is the ascetic like the husk, **Bakuśa** is the ascetic who is slightly tainted by some considerations for his body, books and desciples, **Kuśīla** is the ascetic who at times commits very slight lapse in the perfect observance of the secondary vows, **Nirgrantha** is the ascetic who is absolutely passionless in the eleventh & twelfth stages of spiritual development and **Snātaka** is the omniscient in the 13th & 14th stages of spiritual development. **Nirgranthaḥ** - (are five kinds) of Nirgrantha ascetics.

सूत्रार्थ : पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक – ये पाँच निर्ग्रन्थ मुनि हैं।

English Rendering : Pulāka, Bakuśa, Kuśīla, Nirgrantha and Snātaka are five kinds of Nirgrantha (passionless) ascetics.

टीका : जिनका मन उत्तर-गुणों की भावना से रहित है, जो कहीं पर और कदाचित् व्रतों में भी परिपूर्णता को प्राप्त नहीं होते हैं, वे अविशुद्ध पुलाक (मुरझाये हुए धान्य) के समान होने से पुलाक कहे जाते हैं। जो निर्ग्रन्थ होते हैं, व्रतों का अखण्ड रूप से पालन करते हैं, शरीर और उपकरणों की शोभा बढ़ाने में लगे रहते हैं, परिवार से घिरे रहते हैं और विविध प्रकार के मोह से युक्त होते हैं, वे बकुश कहलाते हैं।

कुशील दो प्रकार के होते हैं - प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील। जो परिग्रह से घिरे रहते हैं, जो मूल और उत्तर गुणों में परिपूर्ण हैं, लेकिन कभी-कभी उत्तर गुणों की विराधना करते हैं, वे प्रतिसेवना कुशील कहलाते हैं। जिन्होंने अन्य कषायों के उदय को जीत लिया है और जो केवल सञ्ज्वलन कषाय के अधीन हैं वे कषाय कुशील कहलाते हैं।

जिस प्रकार जल में लकड़ी से की गई रेखा अप्रकट रहती है, उसी प्रकार जिनके कर्मों का उदय अप्रकट हो और जो अन्तर्मुहूर्त के बाद प्रकट होने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त करते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

जिन्होंने चार घातिया कर्मों को नष्ट कर दिया है, ऐसे सयोग एवं अयोग दोनों प्रकार के केवली स्नातक कहलाते हैं।

ये पाँचों ही निर्ग्रन्थ होते हैं। ये भेद केवल चारित्र रूप परिणामों की न्यूनाधिकता की अपेक्षा से हैं।

Comments : The saint who is slothful regarding the practice of the secondary vows and who at times commits lapses in perfect observance of even the primary vows, is called 'Pulāka' on account of his resemblance to the empty or shrivelled grain. The saint who is passionless, observes the vows perfectly but who cares for the adornment of the body and the implements, who is surrounded by his family members and whose mind is spotted by infatuation is called 'Bakuśa'.

'Kuśīla' i.e. saints of imperfect or unwholesome dispositions are of two kinds - 'Pratisevanā Kuśīla' and 'Kaṣāya Kuśīla'. The saint who is not free from attachment, who observes both primary and secondary vows to perfection but makes lapsing occasionally with regard to the secondary vows are known as 'Pratisevanā Kuśīla'. The ascetic who has controlled all passions except the Sañjavalana passion is 'Kaṣāya Kuśīla'.

The saint, in whom the rise of karmas is indistinct like the mark of the line made in water by a stick and who will attain the perfect knowledge and perception after one Antarmuhūrta is called 'Nirgrantha' or passionless.

The omniscients in the thirteenth and fourteenth stages whose destructive karmas have been destroyed are called 'Snātakas' or perfect saint.

All these are five kinds passionless (Nirgranthas). The differentiation is only from the consideration of their varying degree of conduct related mental dispositions.

निर्ग्रन्थ मुनियों की विशेषता

Speciality of Nirgrantha ascetics

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः।।४७।।

(संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्या-उपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः।)

Saṁyamaśrutaprātisevanātīrthaliṅgaleśyopapāda-sthānavikalpataḥ Sādhyāḥ. (47)

शब्दार्थ : **संयम** – संयम; **श्रुत** – श्रुत; **प्रतिसेवना** – प्रतिसेवना; **तीर्थ** – तीर्थ; **लिङ्ग** – लिङ्ग; **लेश्या** – लेश्या, **उपपाद** – उपपाद; **स्थानविकल्पतः** – स्थान के भेद से; **साध्याः** – (इन निर्ग्रन्थों का) व्याख्यान करना चाहिए।

Meaning of Words : **Saṁyama** - self-restraint; **Śruta** - scriptural knowledge; **Pratisevanā** - transgression; **Tīrtha** - the period of Tirthaṅkara; **Liṅga** - sex gender; **Leśyā** - colouration; **Upapāda** - birth; **Sthānavikalpataḥ** - with respect to the state or condition; **Sādhyāḥ** - must describe (these Nirgranthas).

सूत्रार्थ : संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए।

English Rendering : These Nirgranthas - the passionless unattached ascetics are to be characterized on the basis of self-restraint, scriptural knowledge, transgression, the period of Tīrthaṅkara, sex-gender, passion tainted state, birth & the state or the condition.

टीका : पाँच प्रकार के निर्ग्रन्थ मुनियों के जो भेद पिछले सूत्र में कहे गये थे, उनके लक्षणों को इस सूत्र द्वारा कहा जा रहा है। **संयम–** संयम में पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील सामायिक और छेदोपस्थापना इन दो संयमों में रहते हैं। कषाय–कुशील इन दो संयमों के साथ परिहारविशुद्धि और सूक्ष्मसाम्पराय संयमों में भी रहते हैं। निर्ग्रन्थ और स्नातक मात्र यथाख्यात संयत होते हैं।

श्रुत – पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील उत्कृष्ट रूप से अभिन्नाक्षर (एक भी अक्षर से न्यून न हो) दशपूर्वधर होते हैं। कषायकुशील और निर्ग्रन्थ चौदह पूर्वधर होते हैं। जघन्य रूप से पुलाक का श्रुत आचारवस्तु प्रमाण होता है। बकुश, कुशील और निर्ग्रन्थों का श्रुत आठ प्रवचन मातृकाओं (पाँच समिति और तीन गुप्ति) प्रमाण होता है। स्नातक श्रुतज्ञान रहित होते हैं।

प्रतिसेवना – व्रतों में दोष लगने को प्रतिसेवना कहते हैं। पुलाक के पाँच मूलगुण और रात्रिभोजन त्याग व्रत में किसी एक की विराधना होती है। किसी दूसरे के दबाववश जबरदस्ती के कारण किसी एक व्रत का प्रतिसेवन हो जाता है, जैसे यह सोचकर कि किसी श्रावक का उपकार होगा, अतः विद्यार्थी आदि को रात्रि में भोजन करा कर रात्रिभोजन त्याग व्रत का विराधक होता है। बकुश के दो भेद हैं – उपकरण बकुश और शरीर बकुश। उपकरण बकुश नाना प्रकार के संस्कारयुक्त उपकरणों को चाहता है। शरीर बकुश अपने शरीर में तेल मर्दन आदि संस्कारों को करता है। यही दोनों की प्रतिसेवना है। प्रतिसेवना कुशील मूलगुणों की विराधना नहीं करता, किन्तु उत्तर गुणों की विराधना कभी–कभी करता है। कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक के प्रतिसेवना नहीं होती।

तीर्थ – पाँचों प्रकार के निर्ग्रन्थ सभी तीर्थङ्करों के काल में होते हैं।

लिङ्ग – लिङ्ग के दो भेद हैं – द्रव्य लिङ्ग और भाव लिङ्ग। पाँचों प्रकार के निर्ग्रन्थों में भाव लिङ्ग समान रूप से पाया जाता है। द्रव्य लिङ्ग यानी शरीर की ऊँचाई, रङ्ग व पिच्छिका आदि की अपेक्षा उनमें भेद है। एक पुरुष लिङ्ग ही है।

लेश्या – पुलाक के उत्तरवर्ती तीन – पीत, पद्म और शुक्ल लेश्याएँ होती हैं। बकुश और प्रतिसेवना कुशील के छहों लेश्याएँ होती हैं। कषायकुशील के उत्तरवर्ती चार लेश्याएँ – कापोत, पीत, पद्म एवं शुक्ल लेश्याएँ होती हैं। सूक्ष्मसाम्पराय और कषायकुशील के तथा निर्ग्रन्थ और स्नातक के केवल शुक्ल लेश्या होती है और अयोगकेवली लेश्या से रहित होते हैं।

उपपाद – पुलाक का उत्कृष्ट उपपाद सहस्रार कल्प के उत्कृष्ट स्थिति वाले देवों में होता है। बकुश और प्रतिसेवना कुशील का उत्कृष्ट उपपाद आरण और अच्युत कल्प के बाईस सागरोपम की स्थिति वाले देवों में होता है। कषायकुशील और निर्ग्रन्थ (ग्यारहवें गुणस्थानवाले) का उत्कृष्ट उपपाद सर्वार्थसिद्धि के तैंतीस सागरोपम स्थितिवाले देवों में होता है। इन सभी का जघन्य उपपाद सौधर्म कल्प में दो सागरोपम की स्थिति वाले देवों में होता है। स्नातक मोक्ष जाते हैं।

स्थान – कषाय निमित्तक असङ्ख्यात संयम स्थान होते हैं। पुलाक और कषायकुशील के सबसे जघन्य लब्धिस्थान होते हैं। वे दोनों असङ्ख्यात स्थानों तक एक साथ जाते हैं। इसके बाद पुलाक की व्युच्छित्ति हो जाती है। आगे कषायकुशील असङ्ख्यात स्थानों तक अकेला जाता है। इससे आगे कषायकुशील, प्रतिसेवना कुशील और बकुश असङ्ख्यात स्थानों तक एक साथ जाते हैं। यहाँ बकुश की व्युच्छित्ति हो जाती है। इससे भी असङ्ख्यात स्थान आगे जाकर प्रतिसेवना कुशील की व्युच्छित्ति हो जाती है। पुनः इससे भी असङ्ख्यात स्थान आगे जाकर कषाय कुशील की व्युच्छित्ति हो जाती है। इससे आगे अकषाय स्थान है जो निर्ग्रन्थ प्राप्त करते हैं। उसकी भी असङ्ख्यात स्थान आगे जाकर व्युच्छित्ति हो जाती है। इससे आगे एक स्थान जाकर स्नातक निर्वाण को प्राप्त होता है। इनकी संयमलब्धि अनन्तगुणी होती है।

Comments : In this Sūtra, the characteristics of the five kinds of passionless (Nirgrantha) saints mentioned in the previous Sūtra are

being described. **Saṁyama** (Conduct) Pulāka, Bakuśa and Pratisevanā Kuṣīla dwell in the first two types of conduct - Sāmāyika and Chedopasthāpanā. Kaṣāya Kuṣīla, in addition to these two kinds of conduct also dwell in 'Parihāraviśuddhi' and 'Sūkṣmasāmparāya' kinds of conduct. Nirgrantha and Snātaka dwell only in Yathākhyāta conduct.

Śruta (Scriptures) - Pulāka, Bakuśa and Pratisevanā Kuṣīla master the scriptures to the maximum limit of ten Purvās. Kaṣāya Kuṣīla and Nirgranthas are masters of fourteen Pūrvas. The minimum scriptural knowledge of Pulāka is of the extent of his conduct related activities and that of Bakuśa, Kuṣīla and Nirgranthas is of the extent of three controls (Guptis) and five regulations (Samitis) called the eight fold mother of scriptures. Snātaka are without scriptures knowledge.

Pratisevanā - i.e. Transgression - Transgression in the accepted vows is called Pratisevanā. Pulāka are found to transgress in their primary vows and in abstinence from taking food at night. Transgress in any of the primary vows in under compulsion from others and abstinence from taking food at night is with reference to the assistance to a student in acceptance of meals at night. Bakuśas are of two kinds - Upakarāṇa Bakuśa and Śarīra Bakuśa. The former one desires to have several kinds of adorations of his implements and the later one adorns his body by use of oil etc. These are the transgressions of the two. Pratisevanā Kuṣīla never transgress the primary vows but occassionally commits transgression in his secondary vows. There is no transgression by 'Kaṣāya Kuṣīla', 'Nirgrantha' and 'Snātaka'.

Tīrtha (Religious realm) - All the five kinds of passionless saints are found in the religious realms of all Tīrthaṅkaras.

Liṅga (sign) - It is of two kinds - Physical and psychical. From the point of view of psychical & physical sign all these five kind of monks have the same kind of sexi sign. As regards physical signs, body height, complexion, Pīcchikā etc., there are differences. They all have male sign.

Leśyā (Passion tainted thought complexion) - Pulākas are endowed with last three Leśyās - yellow, lotus hue (pink) and white. Bakuśa and Pratisevanā Kuṣīla may have all the six Leśyās. Kaṣāya Kuṣīla may have last four - grey, yellow, lotus hue and white Leśyās. Sūkṣmasāmparāya, Kaṣāya Kuṣīla, Nirgrantha and Snataka have only white Leśyās and vibrationless omniscients are without any Leśyās.

Upapāda (Instantaneous Rise) - The highest celestial birth of the Pulāka saint is in Sahasrāra Kalpa among the Devas of maximum life-time. Bakuśa and Pratisevanā Kuśila take birth in Āraṇa and Acyuta Kalpas with the life-span of twenty-two Sāgaropamas. Kaṣāya Kuśīla and Nirgranthas (in eleventh stage of spiritual development) take their birth in Sarvārthasiddhi with the life-span of thirty three Sāgaropamas. The lowest birth of all these kinds of saints is in Soudharma Kalpa with the life-span of two Sāgaropamas. Snātakas attain salvation.

Sthāna (Region) - There are in-numarable passion related states. Among these the minimum states attained are in the case of Pulāka and Kaṣāya Kuśīla. They go together up to in-numerable states. After that the state of Pulāka is cut off. Thereafter Kaṣāya Kuśīla proceeds alone up to in-numerable states after it. Thereafter Kaṣāya Kuśīla, Pratisevanā Kuśīla and Bakuśa attain in-numerable states simultaneously. After that the state of Bakuśa is cut of. The state of Pratisevanā Kuśīla is cut of ater in-numerable states thereafter. Again after in-numerable states thereafter, the state of Kaṣāya Kuśīla is cut off. Beyond that Nirgranthas attain in-numerable passionless states. That state is also cut off after traversing in-numerable states. After traversing one state beyond that Snātakas attain liberation. The self-discipline attained at that stage is infinite fold.

इति तत्त्वार्थसूत्रे नवमोऽध्यायः।

End of Ninth Chapter of Tattvārthasūtra.